सस्ता साहित्य मण्डल
सर्वोदय साहित्यमाला   बानवेवाँ ग्रन्थ

[गांधी साहित्य माला · दूसरी पुस्तक]

[९२ : २]

ब्रह्मचर्य

[संयम तथा ब्रह्मचर्य पर गांधीजी के लेखों का संग्रह]

लेखक
महात्मा गांधी

सस्ता साहित्य मण्डल
दिल्ली लखनऊ

प्रकाशक,
मार्तण्ड उपाध्याय, मन्त्री,
सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली।

संस्करण
अगस्त, १९३९ . २०००
मूल्य
आठ आना

मुद्रक,
एम० एन० ठुलल,
फेडरल ट्रेड प्रेस,
नया बाजार, दिल्ली।

प्रकाशक की ओर से

महात्माजी की मडल से प्रकाशित 'अनीति की राह पर' पुस्तक पाठकों ने देखी ही होगी। 'ब्रह्मचर्य तथा सयम वनाम भोग' पर गाँधीजी के लेखों का हिन्दी में वह पहला संग्रह था। इसमे सन् १६३७ तक के लेख उसमे आगये है। उसके बाद से आजतक के गाँधीजी के लेखो का यह दूसरा सग्रह है। इसे 'अनीति की राह पर', का दूसरा भाग भी समझ सकते हैं। किसी वजह से जो लेख पहले भाग मे न आपाये, वे इसमें ले लिये गये हैं। आशा है पाठकों को यह सग्रह रुचेगा और इसको ज्यादा-से-ज्यादा तादाद मे खरीदकर अपनावेगे। इसमे कहीं कोई त्रुटि हो तो सूचित करने की कृपा करे।

—मत्री

विषय-सूची

परिशिष्ट

ब्रह्मचर्य

: १ :

ब्रह्मचर्य

हमारे व्रतों में तीसरा व्रत ब्रह्मचर्य का है। वास्तव में तो दूसरे सभी व्रत एक सत्य के व्रत में से ही उत्पन्न होते है और उसीके लिए उनका अस्तित्व है। जिसने सत्य का आश्रय लिया है, उसी की उपासना करता है, वह दूसरी किसी भी वस्तु की आराधना करे तो व्यभिचारी बन गया। फिर विकार की आराधना तो की ही कैसे जा सकती है? जिसकी सारी प्रवृत्तियाँ एक सत्य के दर्शन के लिए ही है वह सन्तान उत्पन्न करने या घर-गिरिस्ती चलाने मे पड़ ही कैसे सकता है? भोग-विलास द्वारा किसी को सत्य प्राप्त होने की आजतक एक भी मिसाल हमारे पास नहीं है।

अहिंसा के पालन को ले तो उसका पूरा-पूरा पालन भी ब्रह्मचर्य के विना असाध्य है, अहिंसा अर्थात् सर्व-व्यापी प्रेम। जिस पुरुष ने एक स्त्री को या स्त्री ने एक पुरुष को अपना प्रेम सौंप दिया उसके पास दूसरे के लिए क्या बच गया? इसका अर्थ ही यह हुआ कि 'हम दो पहले और दूसरे सब बाद को।' पतिव्रता स्त्री पुरुष के लिए और पत्नीव्रती पुरुष स्त्री के लिए सर्वस्व होमने को तैयार होगा, इससे यह स्पष्ट है कि उससे सर्व-

व्यापी प्रेम का पालन हो ही नहीं सकता। वह सारी सृष्टि को अपना कुटुम्ब बना ही नहीं सकता, क्योंकि उसके पास उसका अपना माना हुआ एक कुटुम्ब मौजूद है या तैयार हो रहा है। जितनी उसकी वृद्धि उतना ही सर्वव्यापी प्रेम मे विक्षेप होगा। सारे जगत् मे हम यही होता हुआ देख रहे है। इसलिए अहिंसा-व्रत का पालन करनेवाला विवाह के बन्धन मे नहीं पड सकता; विवाह के बाहर के विकार की तो बात ही क्या?

तब जो विवाह कर चुके है उनकी गति? उन्हे सत्य की प्राप्ति कभी न होगी? वे कभी सर्वार्पण नहीं कर सकते? हमने इसका रास्ता निकाला ही है—विवाहित अविवाहित-सा हो जाय। इस बारे मे इससे बढ़कर मुझे दूसरी बात नहीं मालूम हुई। इस स्थिति का मजा जिसने चखा है, वह गवाही दे सकता है। आज तो इस प्रयोग की सफलता सिद्ध हुई कही जा सकती है। विवाहित स्त्री-पुरुष का एक-दूसरे को भाई-बहन मानने लग जाना, सारे झगड़ो से मुक्त हो जाना है। संसार-भर की सारी स्त्रियाँ बहने है, माता है, लड़की है—यह विचार ही मनुष्य को एकदम ऊँचा ले जाने वाला है, बन्धन से मुक्त कर देनेवाला हो जाता है। इसमे पति-पत्नी कुछ खोते नहीं, उलटे अपनी पूँजी बढाते है, कुटुम्ब बढ़ाते है। प्रेम भी विकार-रूप-मैल के निकालने से बढता है। विकार चले जाने से एक दूसरे की सेवा भी अधिक अच्छी हो सकती है, एक दूसरे के बीच कलह के अवसर कम होते है। जहाँ स्वार्थी, एकाँगी प्रेम है, वहाँ कलह के लिए ज्यादा

गुञ्जाइश है।

उपरोक्त प्रधान विचार कर लेने और उसके हृदय में बैठ जाने के बाद ब्रह्मचर्य में होने वाले शारीरिक लाभ, वीर्य-रक्षा आदि बहुत गौड़ हो जाते हैं। जान-बूझकर भोग-विलास के लिए वीर्य खोना और शरीर को निचोड़ना कितनी बड़ी मूर्खता है? वीर्य का उपयोग तो दोनों की शारीरिक और मानसिक शक्ति को बढ़ाने के लिए है। विषय-भोग में उसका उपयोग करना उसका अति दुरुपयोग है, और इस कारण वह बहुतेरे रोगों की जड़ बन जाता है।

ऐसे ब्रह्मचर्य का पालन मन, वचन और काया से होना चाहिए। सारे व्रतों के विषय में यही बात है। हमने गीता में पढ़ा है कि जो शरीर को वश में रखता हुआ जान पड़ता है, पर मन से विकार का पोषण किया करता है, वह मूढ़ मिथ्याचारी है। सबको इसका अनुभव होता है। मन को विकारी रहने देकर शरीर को दबाने की कोशिश करना हानिकर ही है। जहाँ मन है, वहाँ अन्त को शरीर भी घसिटाये बिना नहीं रहता। यहाँ एक भेद समझ लेना जरूरी है। मन को विकारवश होने देना एक बात है, और मन का अपने-आप, अनिच्छा से, बलात् विकार को प्राप्त हो जाना या होते रहना दूसरी बात है। इस विकार में यदि हम सहायक न बने तो अन्त में जीत ही है। हम प्रतिपल यह अनुभव करते हैं कि शरीर तो क़ाबू में रहता है, पर मन नहीं रहता। इसलिए शरीर को तुरन्त ही वश में करके मन को वश

मे करने का हम सतत यत्न करते रहे तो हमने अपने कर्त्तव्य का पालन कर दिया। हम मन के अधीन हुए कि शरीर और मन मे विरोध खड़ा हो जाता है, मिथ्याचार का आरम्भ हो जाता है, पर कह सकते है कि मनोविकार को दबाते ही रहने तक दोनो साथ-साथ जाने वाले है।

इस ब्रह्मचर्य का पालन बहुत कठिन, लगभग असम्भव माना गया है। इसके कारण की खोज करने से मालूम होता है कि ब्रह्मचर्य का संकुचित अर्थ किया गया है। जननेन्द्रिय-विकार के विरोधमात्र को ही ब्रह्मचर्य का पालन मान लिया गया है। मेरी राय मे यह अधूरी और ग़लत व्याख्या है। विषयमात्र का निरोध ही ब्रह्मचर्य है। जो और-और इन्द्रियो को जहाँ-तहाँ भटकने देकर केवल एक ही इन्द्रिय को रोकने का प्रयत्न करता है वह निष्फल प्रयत्न करता है, इसमे सन्देह क्या है? कान से विकार की बाते सुनना, आँख से विकार उत्पन्न करने वाली वस्तु देखना, जीभ से विकारोत्तेजक वस्तु का स्वाद लेना, हाथ से विकारो को उभारने वाली चीज़ को छूना और जननेन्द्रिय को रोकने का इरादा रखना, यह तो आग मे हाथ डालकर जलने से बचने का यत्न करने-जैसा है। इसलिए जो जननेन्द्रिय को रोकने का निश्चय करे उसका सभी इन्द्रियो को अपने-अपने विकारो से रोकने का निश्चय पहले किया हुआ होना चाहिए। मुझे सदा ऐसा जान पड़ा है कि ब्रह्मचर्य की संकुचित व्याख्या से नुकसान हुआ है। मेरा तो यह निश्चय मत है और अनुभव है कि यदि हम सब

इन्द्रियों को एक साथ वश में करने का अभ्यास करें तो जननेन्द्रिय को वश में करने का प्रयत्न शीघ्र ही सफल हो सकता है। इनमें मुख्य वस्तु स्वादेन्द्रिय है। इसीलिए उसके संयम को हमने पृथक स्थान दिया है। उस पर अगली वार विचार करेंगे।

ब्रह्मचर्य के मूल कर्म को सब याद रक्खें। ब्रह्मचर्य अर्थात् ब्रह्म की—सत्य की—शोध में चर्या, अर्थात तत्सम्बन्धी आचार। इस मूल अर्थ से सर्वेन्द्रिय-सयम का विशेष अर्थ निकलता है। केवल जननेन्द्रिय-सयम के अधूरे अर्थ को तो हमें भूल ही जाना चाहिए।

मंगल-प्रभात, ५-८-३०

: २ :

सन्तति-निग्रह—१

मेरे एक साथी ने, जो मेरे लेखों को बडे ध्यान के साथ पढते रहते है, जब यह पढा कि सन्तति-निग्रह के लिए सम्भवत मैं उन दिनों सहवास करने की बात स्वीकार कर लूँगा जिनमें कि गर्भ रहने की सम्भावना नहीं होती, तो उन्हें बड़ी बेचैनी हुई। मैंने उन्हें यह समझाने की कोशिश की कि कृत्रिम साधनों से सन्तति-निग्रह करने की बात मुझे जितनी खलती है उतनी यह नहीं खलती, फिर यह है भी अधिकतर विवाहित दम्पतियों के ही लिए। आखिर बहस बढते-बढते इतनी गहराई पर चलती गई

जिसकी हम दोनो मे से किसी ने आशा न की थी। मैंने देखा कि यह बात भी उन मित्र को कृत्रिम साधनो से सन्तति-निग्रह करने-जैसी ही बुरी प्रतीत हुई। इससे मुझे मालूम पडा कि यह मित्र स्मृतियो के इस बन्धन को साधारण मनुष्यो के लिए व्यवहार-योग्य समझते है कि पति-पत्नी को भी तभी सहवास करना चाहिए, जबकि उन्हे सचमुच सन्तानोत्पत्ति की इच्छा हो। इस नियम को जानता तो मै पहले से था, लेकिन उसे इस रूप मे पहले कभी नहीं माना था, जिस रूप मे कि इस बातचीत के बाद मानने लगा हूँ। अभी तक तो, पिछले कितने ही सालो से, मै इसे ऐसा पूर्ण आदर्श ही मानता आया हूँ, जिसपर ज्यो-का-त्यो अमल नहीं हो सकता। इसलिए मै समझता था कि सन्तानोत्पत्ति की खास इच्छा के बगैर भी विवाहित स्त्री-पुरुष जबतक एक दूसरे की रजामन्दी से सहवास करे तबतक वे वैवाहिक उद्देश्य की पूर्ति करते हुए स्मृतियो के आदेश का भंग नहीं करते, लेकिन जिस नये रूपमे अब मै स्मृति की बात को लेता हूँ वह मेरे लिए मानो एक इलहाम है। स्मृतियो का जो यह कहना है कि जो विवाहित स्त्री-पुरुष इस आदेश का दृढता के साथ पालन करे वे वैसे ही ब्रह्मचारी है जैसे अविवाहित रहकर सदाचारी जीवन व्यतीत करने वाले होते है, उसे अब मै इतनी अच्छी तरह समझ गया हूँ जैसे पहले कभी नहीं जानता था।

इस नये रूप मे, अपनी कामवासना को तृप्त करना नहीं, बल्कि सन्तानोत्पत्ति ही सहवास का एकमात्र उद्देश्य है। साधारण

काम-पूर्त्ति तो, विवाह की इस दृष्टि से, भोग ही माना जायगा। जिस आनन्द को अभी तक हम निर्दोष और वैध मानते आये है उसके लिए ऐसे शब्द का प्रयोग कठोर तो मालूम होगा, लेकिन प्रचलित प्रथा की बात मै नही कर रहा हूँ, बल्कि उस विवाह-विज्ञान को ले रहा हूँ जिसे हिन्दू-ऋषियो ने बताया है। यह हो सकता है कि उन्होने इसे ठीक ढग से न रक्खा हो या वह बिल्कुल गलत ही हो, लेकिन मुझ-जैसे आदमी के लिये तो, जो स्मृतियो की कई बातो को अनुभव के आधार-भूत मानता है, उनके अर्थ को पूरी तरह स्वीकार किये बगैर कोई चारा ही नही है। कुछ पुरानी बातो को उनके पूरे अर्थो मे ग्रहण करके प्रयोग मे लाने के अलावा और कोई ऐसा तरीका मै नही जानता जिससे उनकी सचाई का पता लगाया जा सके। फिर वह जाँच कितनी ही कडी क्यो न प्रतीत हो और उससे निकलने वाले निष्कर्ष कितने ही कठोर क्यो न लगे।

ऊपर मैने जो-कुछ कहा है उसको देखते हुए, कृत्रिम साधनो या ऐसे दूसरे उपायो से सन्तति-निग्रह करना बडी भारी गलती है। अपनी जिम्मेदारी को पूरी तरह समझते हुए मै यह लिख रहा हूँ। श्रीमती मार्गरेट सेगर और उनके अनुयायियो के लिए मेरे मनमे बडे आदर का भाव है। अपने उद्देश्य के लिए उनके अन्दर जो अदम्य उत्साह है उससे मै बहुत प्रभावित हुआ हूँ। यह भी मै जानता हूँ कि स्त्रियो को अनचाहे बच्चो की सार-सम्हाल और परवरिश करने के कारण जो कष्ट उठाना पडता है, उसके

लिए उनके मनमे स्त्रियो के प्रति बड़ी सहानुभूति है। साथ ही यह भी मै जानता हूँ कि कृत्रिम सन्तति-निग्रह का अनेक उदार धर्माचार्यों, वैज्ञानिको, विद्वानो और डाक्टरो ने भी समर्थन किया है, जिनमे बहुतो को तो मै व्यक्तिगत रूप से जानता और मानता भी हूँ, लेकिन इस सम्बन्ध मे मेरी जो मान्यता है उसे अगर मै पाठको या कृत्रिम सन्तति-निग्रह के महान् समर्थको से छिपाऊँ तो मै अपने ईश्वर के प्रति, जोकि सत्य के अलावा और कुछ नही है, सच्चा साबित नही होऊँगा। और अगर मैने अपनी मान्यता को छिपाया तो यह निश्चित है कि अपनी गलती को, अगर मेरी यह मान्यता गलत हो, मै कभी नही जान सकूँगा। अलावा इसके, उन अनेक स्त्री-पुरुषो की खातिर भी मै यह जाहिर कर रहा हूँ जो कि सन्तति-निग्रह सहित अनेक नैतिक समस्याओ के बारे मे मेरे आदेश और मत को स्वीकार करते है।

सन्तति-निग्रह होना चाहिए, इस बात पर तो वे भी सहमत है जो इसके लिए कृत्रिम साधनो का समर्थन करते है, और वे भी जो अन्य उपाय बतलाते है। आत्म-संयम से सन्तति-निग्रह करने मे जो कठिनाई होती है, उससे भी इन्कार नही किया जा सकता, लेकिन अगर मनुष्य-जाति को अपनी किस्मत जगानी है तो इसके सिवाय इसकी पूर्ति का कोई और उपाय ही नही है; क्योकि यह मेरा आन्तरिक विश्वास है कि कृत्रिम साधनो से सन्तति-निग्रह की बात सबने मंजूर करली तो मनुष्य-जाति का बडा भारी नैतिक पतन होगा। कृत्रिम सन्तति-निग्रह के समर्थक इसके विरुद्ध प्रायः

जो प्रमाण पेश करते है उनके बावजूद मै यह कहता हूँ।

मेरा विश्वास है कि मुझमे अन्ध-विश्वास कोई नही है। मै यह नही मानता कि कोई बात इसीलिए सत्य है, क्योंकि वह प्राचीन है। न मै यही मानता हूँ कि चूँकि वह प्राचीन है इसलिए उसे सन्दिग्ध समझा जाय। जीवन के आधारभूत कई ऐसी बाते है जिन्हे हम यह समझकर यो ही नही छोड सकते कि उनपर अमल करना मुश्किल है।

इसमे शक नही कि आत्म-सयम के द्वारा सन्तति-निग्रह है कठिन लेकिन अभीतक ऐसा कोई नजर नही आया जिसने संजीदगी के साथ इसकी उपयोगिता मे सन्देह किया हो या यह न माना हो कि कृत्रिम साधनो की बनिस्बत यह ऊँचे दर्जे का है।

मै समझता हूँ, जब हम सहवास को दृढता से मर्यादित रखने के शास्त्रो के आदेश को पूर्णत स्वीकार करले, और उसको ही सबसे बडे आनन्द का साधन न माने, तो यह अपेक्षाकृत आसान भी हो जायगा। जननेन्द्रियो का काम तो सिर्फ यही है कि विवाहित दम्पती के द्वारा यथासम्भव सर्वोत्तम सन्तानोत्पत्ति करे। और यह तभी हो सकता है, और होना चाहिए, जबकि स्त्री-पुरुष दोनो सहवास की नही, बल्कि सन्तानोत्पत्ति की इच्छा से, जोकि ऐसे सहवास का परिणाम होता है, प्रेरित हो। अत-एव सन्तानोत्पति की इच्छा के बगैर सहवास करना अवैध समझा जाना चाहिए और उसपर नियत्रण लगाना चाहिए।

साधारण आदमियो पर ऐसा नियत्रण किया जा सकता है या नही, इसपर अगले अक मे विचार किया जायगा।

: ३ :

सन्तति-निग्रह—२

हमारे समाज की आज ऐसी दशा है कि आत्म-संयम की कोई प्रेरणा ही उससे नही मिलती। शुरू से हमारा पालन-पोषण ही उससे विपरीत दिशा मे होता है। माता-पिता की मुख्य चिन्ता तो यही होती है कि, जैसे भी हो, अपनी सन्तान का व्याह कर दे जिससे चूहो की तरह वे बच्चे जनते रहे। और अगर कही लडकी पैदा होजाय तब तो जितनी भी कम उम्र मे हो सके, विना यह सोचे कि इससे उसका कितना नैतिक पतन होगा, उस का व्याह कर दिया जाता है। विवाह की रस्म भी क्या है, मानो दावत और फिजूलखर्ची की एक लम्बी सरदर्दी ही है। परिवार का जीवन भी वैसा ही होता है जैसाकि पहले से होता आया है, यानी भोग की ओर बढ़ना ही होता है। छुट्टियाँ और त्यौहार भी इस तरह रक्खे गये है, जिससे वैषयिक रहन-सहन की ओर ही अधिक-से-अधिक प्रवृत्ति होती है। जो साहित्य एक तरह से गले चपेटा जाता है उससे भी आम तौरपर विषयोन्मुख मनुष्यो को उसी ओर अग्रसर होने का प्रोत्साहन मिलता है। और अत्यन्त आधुनिक साहित्य तो प्रायः यही शिक्षा देता है कि विषय-भोग ही कर्त्तव्य है और पूर्ण संयम एक पाप है।

ऐसी हालत मे कोई आश्चर्य नही कि काम-पिपासा का नियंत्रण बिल्कुल असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य होगया है। और

अगर हम यह मानते हैं कि सन्तति-निग्रह का अत्यन्त वाँछनीय और बुद्धिमत्तापूर्ण एवं सर्वथा निर्दोष साधन आत्मसंयम ही है तो सामाजिक आदर्श और वातावरण को ही बदलना होगा। इस इच्छित उद्देश्य की सिद्धि का एकमात्र उपाय यही है कि जो व्यक्ति आत्म-संयम के साधन में विश्वास रखते हैं वे दूसरों को भी उससे प्रभावित करने के लिए अपने अटूट विश्वास के साथ खुद ही इसका अमल शुरू करदें। ऐसे लोगों के लिए, मैं समझता हूँ, विवाह की जिस धारणा की मैंने पिछले सप्ताह चर्चा की थी वह बहुत महत्त्व रखती है। उसे भलीभाँति ग्रहण करने का मतलब है अपनी मन स्थिति को बिल्कुल बदल देना अर्थात् पूर्ण मानसिक क्रान्ति। यह नहीं कि सिर्फ कुछ चुने हुए व्यक्ति ही ऐसा करें, बल्कि यही समस्त मानव-जातियों के लिए नियम होजाना चाहिए, क्योंकि इसके भग से मानव-प्राणियों का दर्जा घटता है और अनचाहे बच्चों की वृद्धि, सदा बढ़ती रहनेवाली बीमारियों की शृंखला और मनुष्य के नैतिक पतन के रूपमें उन्हें तुरन्त ही इसकी सजा मिल जाती है। इसमें शक नहीं कि कृत्रिम साधनों द्वारा सन्ततिनिग्रह से नव-जात शिशुओं की संख्या-वृद्धि पर किसी हद तक अंकुश रहता है, और साधारण स्थिति के मनुष्यों का थोड़ा बचाव हो जाता है, लेकिन व्यक्ति और समाज की जो नैतिक हानि इससे होती है उसका पार नहीं क्योंकि जो लोग भोग के लिए ही अपनी काम-वासना की तृप्ति करते हैं, उनके लिए जीवन का

दृष्टिकोण ही बिल्कुल बदल जाता है। उनके लिए विवाह धार्मिक सम्बन्ध नहीं रहता, जिसका मतलब है उन सामाजिक आदर्शों का बिल्कुल बदल जाना, जिन्हे अभीतक हम बहुमूल्य निधि के रूप मे मानते रहे है। निस्सन्देह जो लोग विवाह के पुराने आदर्शों को अन्ध-विश्वास मानते है, उनपर इस दलील का ज्यादा असर न होगा। इसलिए मेरी यह दलील सिर्फ उन्ही लोगो के लिए है जो विवाह को एक पवित्र सम्बन्ध मानते है। और स्त्री को पाशविक आनन्द (भोग) का साधन नहीं, बल्कि सन्तान के धारण और संरक्षण का गुण रखनेवाली माता के रूप मे मानते है।

मैने और मेरे साथी कार्यकर्ताओ ने आत्म-संयम की दिशा मे जो प्रयत्न किया है, उसके अनुभव से मेरे इस विचार की पुष्टि होती है, जिसे कि मैने यहाँ उपस्थित किया है। विवाह की प्राचीन धारणा के प्रखर प्रकाश मे होनेवाली खोज से इसे बहुत ज्यादा बल प्राप्त होगया है। मेरे लिए तो अब विवाहित-जीवन मे ब्रह्मचर्य बिल्कुल स्वाभाविक और अनिवार्य स्थिति बनकर स्वयं विवाह की ही तरह एक मामूली बात हो गई है। सन्तति-निग्रह का और कोई उपाय व्यर्थ और अकल्पनीय मालूम पडता है। एक बार जहाँ स्त्री और पुरुष मे इस विचार ने घर किया नहीं कि जननेन्द्रियो का एकमात्र और महान् कार्य सन्तानोत्पत्ति ही है, सन्तानोत्पत्ति के अलावा और किसी उद्देश्य से सहवास करने को वे अपने रज-वीर्य की दण्डनीय क्षति मानने लगेंगे

और उसके फल-स्वरूप स्त्री-पुरुष मे होनेवाली उत्तेजना को अपनी मूल्यवान शक्ति की वैसी ही दण्डनीय क्षति समझेंगे। हमारे लिये यह समझना बहुत मुश्किल बात नहीं है कि प्राचीन काल के वैज्ञानिकों ने वीर्य-रक्षा को क्यों इतना महत्त्व दिया है और क्यों इस बात पर उन्होंने इतना जोर दिया है कि हम समाज के कल्याण के लिए उसे शक्ति के सर्वोत्कृष्ट रूप मे परिणत करें। उन्होंने तो स्पष्टरूप से इस बात की घोषणा की है कि जो (स्त्री-या-पुरुष) अपनी काम-वासना पर पूर्ण नियन्त्रण करले वह शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक सभी प्रकार की इतनी शक्ति प्राप्त कर लेता है जो और किसी उपाय से प्राप्त नहीं की जा सकती।

ऐसे महान् ब्रह्मचारियों की अधिक संख्या क्या, एक भी ऐसा कोई हमे अपने बीच मे दिखाई नहीं पडता, इससे पाठकों को घबराना नहीं चाहिए। अपने बीच जो ब्रह्मचारी आज हमे दिखाई देते है वे सचमुच बहुत अपूर्ण नमूने है। उनके लिए तो बहुत-से-बहुत यही कहा जा सकता है कि वे ऐसे जिज्ञासु है, जिन्होंने अपने शरीर का तो सयम कर लिया है, पर मन पर अभी सयम नहीं कर पाये हैं। ऐसे दृढ वे अभी नहीं हुए है कि उन पर प्रलोभन का कोई असर ही न हो, लेकिन यह बात इसलिए नहीं है कि ब्रह्मचर्य की प्राप्ति बहुत दुरूह है, बल्कि सामाजिक वातावरण ही उसके विपरीत है और जो लोग ईमानदारी के साथ यह प्रयत्न कर रहे हैं उनमे से अधिकाँश अनजाने सिर्फ इसी

सयम का यत्न करते है, जबकि इसमे सफल होने के लिए उन सब विपयो के संयम का यत्न किया जाना चाहिए, जिनके चगुल मे मनुष्य फँस सकता है। इस तरह किया जाय तो साधारण स्त्री-पुरुपो के लिए भी ब्रह्मचर्य का पालन असम्भव नहीं है, लेकिन यह याद रहे कि इसके लिए भी वैसे ही प्रयत्न की आवश्यकता है जैसा कि किसी भी विज्ञान मे निष्णात होने के अभिलापी किसी विद्यार्थी को करना पड़ता है। यहाँ जिस रूप मे ब्रह्मचर्य को लिया गया है, उस रूप मे जीवन-विज्ञान मे निष्णात होना ही वस्तुत उसका अर्थ भी है।

: ४ :

ब्रह्मचर्य

एक सज्जन लिखते है —

"आपके विचारो को पढ़कर मै बहुत समय से यह मानता आया हूँ, कि सन्तति-निरोध के लिए ब्रह्मचर्य ही एक-मात्र सर्व श्रेष्ठ उपाय है, संभोग केवल सन्तानेच्छा से प्रेरित होकर ही होना चाहिए, बिना सन्तानेच्छा का भोग पाप है, इन बातो को सोचते है तो कई प्रश्न उपस्थित होते है। संभोग सन्तान के लिए किया जाय यह ठीक है, पर एक-दो बार के भोग से सन्तान न हो, तो ? ऐसे मनुष्य को मर्यादापूर्वक किस सीमा के अन्दर

रहना चाहिए? एक-दो बार के संभोग से सन्तान चाहे न हो, पर आशा कहाँ पिण्ड छोडती है? इस प्रकार वीर्य का बहुत-कुछ अपव्यय अनचाहे भी हो सकता है। ऐसे व्यक्ति को क्या यह कहा जाय कि ईश्वर की इच्छा विरुद्ध होने के कारण उसे भोग का त्याग कर देना चाहिए। ऐसे त्याग के लिए तो बहुत आध्यात्मिकता की आवश्यकता है। प्राय ऐसा भी देखने मे आया है कि सन्तान सारी उम्र न होकर उत्तरावस्था मे हुई है, इसलिए आशा का त्याग कितना कठिन है! यह कठिनाई तब और भी बढ जाती है, जब दोनो स्त्री व पुरुष रोग से मुक्त हो।"

यह कठिनाई अवश्य है, लेकिन ऐसी बाते मुश्किल तो हुआ ही करती हैं। मनुष्य अपनी उन्नति बगैर कठिनाई के कैसे कर सकता है? हिमालय पर चढ़ने के लिए जैसे-जैसे मनुष्य आगे बढता है, कठिनाई बढती ही जाती है। यहाँतक कि हिमालय के सबसे ऊँचे शिखर पर आजतक कोई पहुँच नहीं सका है। इस प्रयत्न मे कई मनुष्यो ने मृत्यु की भेट की है। हर साल चढाई करने वाले नये-नये पुरुषार्थी तैयार होते है, और निष्फल भी होते हैं, फिर भी इस प्रयास को वे छोडते नही। विषयेन्द्रिय का दमन हिमालय पहाड़ पर चढने से तो कठिन है ही, लेकिन उसका परिणाम भी कितना ऊँचा है। हिमालय पर चढनेवाला कुछ कीर्ति पायगा, क्षणिक सुख पायगा, इन्द्रिय-जीत मनुष्य आत्मानन्द पायगा और उसका आनन्द दिन-प्रति-दिन बढ़ता जायगा।

ब्रह्मचर्य-शास्त्र मे तो ऐसा नियम माना गया है कि पुरुष--वीर्य कभी निष्फल होता ही नही, और होना ही नही चाहिए। और जैसा पुरुष के लिए, ऐसा ही स्त्री के लिए भी, इसमे कोई आश्चर्य की बात नही। जब मनुष्य अथवा स्त्री निर्विकार होते हैं, तब वीर्य-हानि असम्भवित हो जाती है, और भोगेच्छा का सर्वथा नाश हो जाता है। और जब पति-पत्नी सन्तान की इच्छा करते है, तभी एक-दूसरे का मिलन होता है। और यही अर्थ गृहस्थाश्रमी के ब्रह्मचर्य का है। अर्थात् स्त्री-पुरुष का मिलन सिर्फ सन्तानोत्पत्ति के लिए ही उचित है, भोग-तृप्ति के लिए कभी नही। यह हुई कानूनी बात, अथवा आदर्श की बात। यदि हम इस आदर्श को स्वीकार करे तो हम समझ सकते है कि भोगेच्छा की तृप्ति अनुचित है, और हमे उसका यथोचित त्याग करना चाहिए। यह ठीक है कि आज कोई इस नियम का पालन नही करते। आदर्श की बात करते हुए हम शक्ति का खयाल नही कर सकते, लेकिन आजकल भोग तृप्ति को आदर्श बताया जाता है। ऐसा आदर्श कभी हो ही नही सकता, यह स्वयं सिद्ध है। यदि भोग आदर्श है तो उसे मर्यादित नही होनी चाहिए। अमर्यादित भोग से नाश होता है, यह सभी स्वीकार करते है। त्याग ही आदर्श हो सकता है और प्राचीनकाल से रहा है। मेरा कुछ ऐसा विश्वास बन गया है कि ब्रह्मचर्य के नियमो को हम जानते नहीहै, इसलिए बड़ी आपत्ति पैदा हुईहै, और ब्रह्मचर्य पालन मे अनावश्यक कठिनाई महसूस करते है। अब जो आपत्ति मुझे

पत्र-लेखक ने बतलाई है, वह आपत्ति ही नहीं रहती है, क्योंकि सन्तति के ही कारण तो एक ही बार मिलन हो सकता है, अगर वह निष्फल गया तो दोबारा उन स्त्री-पुरुषों का मिलन होना ही नहीं चाहिए। इस नियम को जानने के बाद इतना ही कहा जा सकता है कि जबतक स्त्री ने गर्भ धारण नहीं किया तबतक, प्रत्येक ऋतुकाल के बाद जबतक गर्भ धारण नहीं हुआ है, तब-तक, प्रतिमास एक बार स्त्री-पुरुष का मिलन क्षतव्य हो सकता है, और यह मिलन भोग-तृप्ति के लिए न माना जाय। मेरा यह अनुभव है कि जो मनुष्य वचन से और कार्य से विकार-रहित होता है, उसे मानसिक अथवा शारीरिक व्याधि का किसी प्रकार का डर नहीं है। इतना ही नहीं, बल्कि ऐसे निर्विकार व्यक्ति व्याधियों में भी मुक्त होते हैं और इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। जिस वीर्य से मनुष्य-जैसा प्राणी पैदा हो सकता है, उसके अविच्छिन्न संग्रह से अमोघ शक्ति पैदा होनी ही चाहिए। यह बात शास्त्रों में तो कही गई है, लेकिन हरेक मनुष्य इसे अपने लिए यत्न से सिद्ध कर सकता है। और जो नियम पुरुषों के लिए है वही स्त्रियों के लिए भी है। आपत्ति सिर्फ यह है कि मनुष्य मन से विकार-मय रहते हुए शरीर में विकार-रहित होने की व्यर्थ आशा करता है। और अन्त में मन और शरीर दोनों को क्षीण करता हुआ गीता की भाषा में मूढ़ात्मा और मिथ्याचारी बनता है।

ह० से०, १३-३-३७

: ५ :

सम्भोग की मर्यादा

बंगलौर से एक सज्जन लिखते है —

"आप कहते है कि विवाहित दम्पती को एकमात्र तभी सम्भोग करना चाहिए जब दोनो बच्चा पैदा करना चाहे, पर मेहरबानी करके यह तो बतलाइए कि बच्चा पैदा करने की इच्छा किसी को क्यो हो ? बहुत-से लोग माँ-बाप बनने की जिम्मेदारी को पूरी तरह महसूस किये बगैर ही सन्तानोत्पत्ति की इच्छा ही करते है, और दूसरे, बहुत से अच्छी तरह यह जानते हुए भी कि वे माँ-बाप होने की जिम्मेदारियो को निबाहने मे असमर्थ है, बच्चो की हविस रखते है। बहुत-से ऐसे लोग भी बच्चे पैदा करना चाहते है जो शारीरिक और मानसिक दृष्टि से सन्तानोत्पत्ति के अयोग्य है। क्या आप यह नही सोचते कि इन लोगो के लिए प्रजनन करना गलती है ?

"बच्चे पैदा करने की इच्छा का उद्देश्य क्या है, यह मै जानना चाहता हूँ। बहुत-से लोग इसलिए बच्चो की इच्छा करते है कि वे उनकी सम्पत्ति के वारिस बने और उनके जीवन की नीरसता को मिटाकर उसे सरस बनाये। कुछ लोग इसलिए भी पुत्र की इच्छा करते है कि ऐसा न हुआ तो मरने पर वे स्वर्ग मे न जा सकेगे। क्या इन सबका बच्चे की इच्छा करना गलती नही है ?"

किसी बात के कारणों की खोज करना तो ठीक है, लेकिन हमेशा ही उन्हें पा लेना सम्भव नहीं है। सन्तान की इच्छा विश्वव्यापी है, लेकिन अपने वंशजों के द्वारा अपने को कायम रखने की इच्छा अगर काफी और सन्तोषजनक कारण नहीं है तो इसका कोई दूसरा सन्तोषजनक कारण मैं नहीं जानता। मगर सन्तानोत्पत्ति की इच्छा का जो कारण मैंने बतलाया है वह अगर काफी सन्तोषजनक न मालूम हो तो भी जिस बात का मैं प्रतिपादन कर रहा हूँ, उसमें कोई दोष नहीं आता, क्योंकि यह इच्छा तो है ही। मुझे तो यह स्वाभाविक ही मालूम पड़ती है। मैं पैदा हुआ, इसका मुझे कोई अफसोस नहीं है। मेरे लिए यह कोई गैर-कानूनी बात नहीं है कि मुझमें जो भी सर्वोत्तम गुण हों उन्हें मैं दूसरे में मूर्त्तरूप में उतरे हुए देखूँ। कुछ भी हो, जबतक खुद प्रजनन में ही मुझे कोई बुराई न मालूम दे और जबतक मैं यह न देखलूँ कि खाली आनन्द के लिए सम्भोग करना भी ठीक ही है, तबतक मुझे इसी बात पर क़ायम रहना चाहिए कि सम्भोग तभी ठीक है जबकि वह सन्तानोत्पत्ति की इच्छा से किया जाय। मैं समझता हूँ कि स्मृतिकार इस बारे में इतने स्पष्ट थे कि मनु ने पहले पैदा हुए बच्चों को ही धर्म्य (धर्म से पैदा हुए) बतलाया है और बाद में पैदा हुए बच्चों को काम्य (काम-वासना से पैदा हुए) बतलाया है। इस विषय में यथासम्भव अनासक्त भाव से मैं जितना अधिक सोचता हूँ उतना ही अधिक मुझे इस बात का पक्का विश्वास होता जाता है

कि इस बारे में मेरी जो स्थिति है और जिसपर मैं क़ायम हूँ वही सही है। मुझे यह स्पष्टतर होता जा रहा है कि इस विषय के साथ जुड़ी हुई अनावश्यक गोपनीयता के कारण इस विषय में हमारा अज्ञान ही सारी कठिनाई की जड़ है। हमारे विचार स्पष्ट नहीं है। परिणामों का सामना करने से हम डरते हैं। अधूरे उपायों को हम सम्पूर्ण या अन्तिम मान कर अपनाते हैं और इस प्रकार उन्हें आचरण के लिए बहुत कठिन बना लेते हैं। मगर हमारे विचार स्पष्ट हों, हम क्या चाहते हैं इस बात का हमें निश्चय हो तो हमारी वाणी और हमारा आचरण दृढ़ होंगे।

इस प्रकार, अगर मुझे इस बात का निश्चय हो कि भोजन का हरेक ग्रास शरीर को बनाने और कायम रखने के ही लिए है तो स्वाद की खातिर मैं कभी खाना न चाहूँगा। यही नहीं, बल्कि मैं यह भी महसूस करूँगा कि अगर भूख या शरीर को कायम रखने की दृष्टि के अलावा कोई चीज़ सुस्वाद होने के ही कारण खाना चाहूँ तो वह रोग की निशानी होगी, इसलिए मुझे उसको वाजिब और स्वास्थ्यप्रद इच्छा समझ कर उसकी पूर्ति करने के बजाय अपनी इस बीमारी को दूर करने की ही फ़िक्र करनी पड़ेगी। इसी तरह अगर मुझे इस बात का निश्चय हो कि प्रजनन की निर्विवाद इच्छा के बगैर सम्भोग करना गैर-कानूनी और शरीर, मन तथा आत्मा के लिए विनाशक है, तो इस इच्छा का दमन करना निश्चय ही आसान हो जायगा--उससे कहीं आसान, जबकि मेरे मन में यह निश्चय न हो कि खाली

इच्छा की पूर्ति करना कानून सम्मत और हितकर है या नहीं। अगर मुझे ऐसी इच्छा के गैर-कानूनीपन या अनौचित्य का स्पष्टरूप से भान हो तो मैं उसे एक तरह की बीमारी समझूँगा और अपनी पूरी शक्ति के साथ उसके आक्रमणों का मुकाबिला करूँगा। ऐसे मुकाबिले के लिए तब मैं अपने को अधिक शक्तिशाली महसूस करूँगा। जो लोग यह दावा करते हैं कि हमें यह बात पसन्द तो नहीं है लेकिन हम असहाय हैं, वे गलती पर ही नहीं हैं, बल्कि झूठे भी हैं, और इसलिए प्रतिरोध में वे कमजोर रहते और हार जाते हैं। अगर ऐसे सब लोग आत्मनिरीक्षण करें तो उन्हें मालूम होगा कि उनके विचार उन्हें धोखा देते हैं। उनके विचारों में वासना की इच्छा होती है, और उनकी वाणी उनके विचारों को गलत रूप में व्यक्त करती है। दूसरी ओर यदि उनकी वाणी उनके विचारों की सच्ची द्योतक हो तो कमजोरी-जैसी कोई बात नहीं हो सकती। हार तो हो सकती है, पर कमजोरी हरगिज नहीं।

इन सज्जन ने अस्वस्थ माता-पिताओं द्वारा किये जाने प्रजनन पर जो आपत्ति की है वह बिल्कुल ठीक है। उन्हें प्रजनन की कोई इच्छा नहीं होनी चाहिए। अगर वे यह कहें कि सम्भोग हम प्रजनन के लिए ही करते हैं, तो वे अपने को और संसार को धोखा देते हैं। किसी भी विषय पर विचार करने में सचाई का हमेशा सहारा लेना पड़ता है। सम्भोग के आनन्द को छिपाने के लिए प्रजनन की इच्छा का बहाना हर्गिज न लेना चाहिए।

ह० से०, २४-७-३७

: ६ :

कृत्रिम साधनों से सन्तति-निग्रह

एक सज्जन लिखते है.—

"हाल मे 'हरिजन' मे श्रीमती सेगर और महात्मा गाँधी की मुलाकात का जो विवरण प्रकाशित हुआ है उसके बारे मे मै कुछ कहना चाहता हूँ।

"इस बातचीत मे जिस खास बात की ओर ध्यान नही दिया गया मालूम पड़ता है वह यह है कि मनुष्य अन्ततोगत्वा कलाकार और उत्पादक है। कम-से-कम आवश्यकताओ की पूति पर ही वह संतोप नही करता, वल्कि सुन्दरता, रंग-बिरंगापन और आकर्पण भी उसके लिए आवश्यक होता है। मुहम्मद साहब ने कहा है कि "अगर तेरे पास एक ही पैसा हो तो उससे रोटी खरीद ले, लेकिन अगर दो हो तो एक से रोटी खरीद और एक से फूल।" इसमे एक महान् मनोवैज्ञानिक सत्य निहित है—वह यह कि मनुष्य स्वभावतः कलाकार है, इसीलिए हम उसे ऐसे कामो के लिए भी प्रयत्नशील पाते है, जो महज उसके शरीर-धारण के लिए आवश्यक नही है। उसने तो अपनी प्रत्येक आवश्यकता को कला का रूप दे रक्खा है और उन कलाओ की खातिर मनो खून वहाया है। मनुष्य की उत्पादक-बुद्धि नई-नई कठिनाइयो और समस्याओ को पैदा करके उनका तेल निकालने के लिए उसे प्रेरित करती रहती है। रूसो, रस्किन टॉल्सटाय, थोरो और गाँधी उसे जैसा 'सरल-सादा'

बनाना चाहते हैं, वैसा वह बन नहीं सकता। युद्ध भी उसके लिए एक आवश्यक चीज़ है और उसे भी उसने एक महान् कला के रूप में परिणत कर दिया है।

"उसके मस्तिष्क को अपील करने के लिए प्रकृति का उदाहरण व्यर्थ है, क्योंकि वह तो उसके जीवन से ही बिल्कुल मेल नहीं खाती है। 'प्रकृति उसकी शिक्षिका नहीं बन सकती।' जो लोग प्रकृति के नाम पर अपील करते हैं वे यह भूल करते है कि प्रकृति मे केवल पर्वत तथा उपत्यकाएँ और कुसुम-क्यारियाँ ही नहीं हैं, बल्कि बाढ, झंझावात और भूकम्प भी है। कट्टर निराकारवादी नीत्शे का कहना है कि कलाकार की दृष्टि से प्रकृति कोई आदर्श नहीं है। वह तो अत्युक्ति तथा विकृतीकरण से काम लेती है। और बहुत-सी चीजों को छोड़ जाती है। प्रकृति तो एक आकस्मिक घटना है। "प्रकृति से अध्ययन करना" कोई अच्छा चिन्ह नहीं है, क्योंकि इन नगण्य चीजों के लिए धूल में लोटना अच्छे कलाकार के योग्य नहीं है। भिन्न प्रकार की बुद्धि के कार्य को, कला-विरोधी मामूली बातों को, देखने के लिए यह आवश्यक है कि हम यह जानें कि हम क्या हैं? हम यह जानते हैं कि जङ्गली जानवर अपने शरीर को बनाये रखने की आवश्यकता-वश कच्चा माँस खाते हैं, स्वादवश नहीं। यह भी हम जानते हैं कि प्रकृति मे तो पशुओं में समागम की ऋतुएँ होती हैं। इन ऋतुओं के अतिरिक्त कभी मैथुन होता ही नहीं, लेकिन उसी फिलासफ़र के अनुसार यह तो अच्छे कलाकार के योग्य नहीं है। जो स्वभावत मनुष्य अच्छा

कलाकार है इसलिये जब सन्तानोत्पत्ति की आवश्यकता न रहे तब मैथुन-कार्य को बन्द कर देना या केवल सन्तानोत्पत्ति की स्पष्ट इच्छा से प्रेरित होकर ही मैथुन करना, इतनी प्राकृतिक, इतनी मामूली इतनी हिसाब-किताब की-सी बात है कि हमारे फिलासफर के कथनानुसार वह उसकी कला-प्रेमी प्रकृति को अपील नही कर सकता। इसलिए वह तो स्त्री-पुरुष के प्रेम को एक बिल्कुल दूसरे पहलू से देखता है—ऐसे पहलू से जिसका सन्तान-वृद्धि से कोई सम्बन्ध नही। यह बात हेवलॉक एलिस और मेरी स्टोप्स-जैसे आप्त पुरुषो के कथनो से स्पष्ट है। यह इच्छा यद्यपि आत्मा से उत्पन्न होती है, पर वह शारीरिक सम्भोग के बिना अपूर्ण रह जाती है। यह उस समय तक रहेगा जबतक हम इस अंश को केवल आत्मा मे पूरा नही कर सकते और उसके लिए शरीर-यत्र की आवश्यकता समझते है। ऐसे ही सहवास के परिणाम का सामना करना बिल्कुल दूसरी समस्या है। यही सन्तान-निग्रह के आन्दोलन का काम आ जाता है; पर यह काम अगर स्वयं आत्मा की ही पुन व्यवस्था पर छोड़ दिया जाय और बाह्य अनुशासन द्वारा—आत्म-संयम के माने इसके अतिरिक्त और कुछ नही है—तो हमे यह आशा नही होती कि उससे जिन उद्देश्यो की पूर्ति होनी चाहिए उन सबको वह सिद्ध कर सकेगा। न इससे बिना सुदृढ़ मनोवैज्ञानिक आधार के सन्तति-निग्रह ही हो सकता है।

"अपनी बात को समाप्त करने से पहले मै यह और कहूँगा कि आत्म-संयम या ब्रह्मचर्य का महत्व मै किसी प्रकार कम नही

करना चाहता। वैषयिक नियन्त्रण को पूर्णता पर ले जानेवाली कला के रूप में मै हमेशा उसकी सराहना करूँगा, लेकिन जैसे अन्य कलाओं की सम्पूर्णता हमारे जीवन मे (और नीत्शे के अनुसार) हमारे सारे जीवन मे, कोई हस्तक्षेप नहीं करती, वैसे ही ब्रह्मचर्य के आदर्श को मै दूसरी बातो पर प्रभुत्व पाने का सहारा नही बनने दूँगा—जनसख्या-वृद्धि-जैसी समस्याओं के हल करने का साधन तो वह और भी कम है। हमने इसका कैसा हौआ बना डाला है। युद्धकालीन बच्चो के बारे मे तो हम जानते ही है। जिन सैनिको ने अपना खून बहाकर अपने देशवासियो के लिए समरागण मे विजय प्राप्त की, क्या हम इसीलिए उन्हे इसका श्रेय न देंगे कि उन्होने रण-क्षेत्र मे भी बच्चे पैदा कर डाले? नहीं, कोई ऐसा नही करेगा। मै समझता हूँ कि इन बातो को मद्देनज़र रखकर ही शास्त्रो (प्रश्नोपनिषद) मे यह कहा गया है कि "ब्रह्मचर्य-मेव तद्यद्रात्रौरत्या सयुज्यते" अर्थात् केवल रात्रि मे ही—(याने दिन के असाधारण समय को छोड़कर) सहवास किया जाय तो वह ब्रह्मचर्य ही जैसा है। यहाँ साधारण वैषयिक जीवन को भी ब्रह्मचर्य के ही समान बताया गया है, इसमे इतनी कठोरता तो जीवन के विविध रूपो मे उलट-फेर करने के फल-स्वरूप ही आई है।"

जो भी कोई ऐसी चीज हो, जिसमे कोरा शब्दाडम्बर, गाली-गलौज या आरोप-आक्षेप न हो उसे मै सहर्ष प्रकाशित करूँगा, जिससे पाठको के सामने समस्या के दोनो पहलू आजावे, और

वे अपने-आप किसी निर्णय पर पहुँच सके। इसलिए इस पत्र को मै बड़ी खुशी के साथ प्रकाशित करता हूँ। खुद मै भी यह जानने के लिए उत्सुक हूँ कि जिस बात को विज्ञान-सिद्ध और हितकारी होने का दावा किया जाता है तथा अनेक प्रमुख व्यक्ति जिसका समर्थन करते है, उसका उज्ज्वल पक्ष देखने की कोशिश करने पर भी मुझे वह क्यो इतनी खलती है?

लेकिन मेरे सन्तोप की कोई ऐसी बात सिद्ध नही होती, जिससे मुझे इसका विश्वास हो जाय कि विवाहित-जीवन मे मैथुन स्वयं कोई अच्छाई है और उसे करने वालो को उससे कोई लाभ होता है। हॉ, अपने खुद के तथा दूसरे अनेक अपने मित्रो के अनुभव पर से इससे विपरीत बात मै जरूर कह सकता हूँ। हम मे से किसी ने भी मैथुन द्वारा कोई मानसिक, आध्यात्मिक या शारीरिक उन्नति की हो, यह मै नही जानता। क्षणिक उत्तेजन और सन्तोष तो उससे अवश्य मिला, लेकिन उसके बाद ही थकावट भी जरूर हुई। और जैसे ही उस थकावट का असर मिटा नही कि मैथुन की इच्छा भी तुरन्त ही फिर जागृत हो गई। हालॉकि मै सदा से जागरूक रहा हूँ, फिर भी अच्छी तरह मुझे याद है कि इस विकार से मेरे कामो मे बडी बाधा पड़ी है। इस कमजोरी को समझकर ही मैने आत्म-सयम का रास्ता पकड़ा, और इसमे सन्देह नही कि तुलनात्मक रूप से काफी लम्बे-लम्बे समय तक मै जो बीमारी से बचा रहता हूँ और शारीरिक एवं मानसिक रूप से जो इतना अधिक और विविध प्रकार का काम कर सकता हूँ,

कि जिसे देखने वालों ने अद्भुत बतलाया है, उसका कारण मेरा यह आत्म-संयम या ब्रह्मचर्य-पालन ही है।

मुझे भय है कि उक्त सज्जन ने जो-कुछ पढ़ा उसका उन्होंने गलत अर्थ लगाया है। मनुष्य कलाकार और उत्पादक है इसमें तो कोई शक नहीं, सुन्दरता और रंगबिरंगापन भी उसे चाहिए ही लेकिन मनुष्य की कलात्मक और उत्पादक प्रवृत्ति ने अपने सर्वोत्तम रूप में उसे यही सिखाया है कि वह आत्म-संयम में कला का और अनुत्पादक (जो सन्तानोत्पत्ति के लिए न हो) ऐसे सहवास में अ-सुन्दरता का दर्शन करे। उसमें कलात्मक की जो भावना है, उसने उसे विवेकपूर्वक यह जानने की शिक्षा दी है कि विविध रंगों का चाहे-जैसा मिश्रण सौन्दर्य का चिन्ह नहीं है, और न हर तरह का आनन्द ही अपने-आप में कोई अच्छाई है। कला की ओर उसकी जो दृष्टि है उसने उसे यह सिखाया है कि वह उपयोगिता में ही आनन्द की खोज करे, याने वही आनन्दोपभोग करे, जो हितकर हो। इस प्रकार अपने विकास के प्रारम्भिक काल में ही उसने यह जान लिया था कि खाने के लिए ही उसे खाना नहीं खाना चाहिए, जैसाकि हममें से कुछ लोग अभी भी करते है बल्कि जीवन टिका रहे इसलिए खाना चाहिए। बाद में उसने यह भी जाना कि जीवित रहने के लिए ही उसे जीवित नहीं रहना चाहिए बल्कि अपने सहजीवियों और उनके द्वारा उस प्रभु की सेवा के लिए उसे जीना चाहिए, जिसने उसे तथा उन सबको बनाया या पैदा किया है। इसी प्रकार जब उसने

विषय-सहवास या मैथुन-जनित आनन्द की बात पर विचार किया तो उसे मालूम पड़ा कि अन्य प्रत्येक इन्द्रिय की भाँति जननेन्द्रिय का भी उपयोग दुरुपयोग होता है और इसका उचित कार्य याने सदुपयोग इसी मे है कि केवल प्रजनन या सन्तानोत्पत्ति के ही लिए सहवास किया जाय। इसके सिवा और किसी प्रयोजन से किया जाने वाला सहवास असुन्दर है और ऐसा करने वाले व्यक्ति और उसकी नस्ल के लिए उसके बहुत भयंकर परिणाम हो सकते है। मैं समझता हूँ, अब इस दलील को और आगे बढ़ाने की कोई ज़रूरत नही।

उक्त सज्जन का यह कहना ठीक ही है कि मनुष्य आवश्यकता से प्रेरित होकर कला की रचना करता है। इस प्रकार आवश्यकता न केवल आविष्कार की जननी है, बल्कि कला की भी जननी है। इसलिए जिस कला का आधार आवश्यकता नही है, उससे हमे सावधान रहना चाहिए।

साथ ही, अपनी हरेक इच्छा को हमे आवश्यकता का नाम नही देना चाहिए। मनुष्य की स्थिति तो एक प्रकार से प्रयोगात्मक है। इस बीच आसुरी और दैवी दोनो प्रकार की शक्तियाँ अपने खेल खेलती है। किसी भी समय वह प्रलोभन का शिकार हो सकता है। अत प्रलोभनो से लडते हुए, उनका शिकार न बनने के रूप मे उसे अपना पुरुषार्थ सिद्ध करना चाहिए। जो अपने माने हुए बाहरी दुश्मनो से तो लड़ता है, किन्तु अपने अन्दर के विविध शत्रुओं के आगे अगुली भी नही उठा सकता या उन्हे

अपना मित्र समझने की गलती करता है, वह योद्धा नहीं है। "उसे युद्ध तो करना ही चाहिए"—लेकिन उक्त सज्जन का यह कहना गलत है "कि उसे भी उसने (मनुष्य ने) एक महान् कला के ही रूप मे परिणत कर दिया है।" क्योंकि युद्ध की कला तो हमने अभी शायद ही सीखी हो। हमने तो झूठे युद्ध को उसी तरह सच्चा मान लिया है, जैसे हमारे पूर्व पुरुषो ने बलिदान का गलत अर्थ लगाकर बजाय अपनी दुर्वासनाओं के बेचारे निर्दोष पशुओ का बलिदान शुरू कर दिया। अबीसीनिया की सीमा में आज जो-कुछ हो रहा है, उसमें निश्चय ही न तो कोई सौन्दर्य है और न कोई कला। उक्त सज्जन ने उदाहरण के लिए जो नाम चुने हैं, वे भी (अपने) दुर्भाग्य से ठीक नहीं चुने, क्योंकि रूसो, रस्किन, थोरो और टॉल्स्टाय तो अपने समय मे प्रथम श्रेणी के कलाकार थे और उनके नाम हममे से अनेको के मरकर भुला दिये जाने के बाद भी वैसे ही अमर रहेंगे।

'प्रकृति' शब्द का उक्त सज्जन ने जो उपयोग किया है, वह भी ठीक नहीं किया मालूम पड़ता है। प्रकृति का अनुसरण या अध्ययन करने के लिए जब मनुष्यो को प्रेरित किया जाता है तो उनसे यह नहीं कहा जाता कि वे जंगली कीड़े-मकोड़ो या शेर की तरह काम करने लगे, बल्कि यह अभिप्राय होता है कि मनुष्य की प्रकृति का उसके सर्वोत्तम रूप मे अध्ययन किया जाय। मेरे खयाल से वह सर्वोत्तम रूप मनुष्य की नई सृष्टि पैदा करने की प्रकृति है, या जो-कुछ भी वह हो, उसीके अध्ययन के

लिए कहा जाता है, लेकिन शायद इस बात को जानने के लिए काफी प्रयत्न की आवश्यकता है। पुराने लोगो के उदाहरण देना आजकल ठीक नहीं है। उक्त सज्जन से मेरा कहना है कि नीत्शे या प्रश्नोपनिषद् को बीच मे घुसेड़ना व्यर्थ है। मेरे लिए तो इस बारे मे अब उद्धरणो की कोई जरूरत नही रही है। देखना यह है कि जिस बारे मे हम चर्चा कर रहे है, उसमे तर्क क्या कहता है? प्रश्न यह है कि हम जो यह कहते है कि जननेन्द्रिय का सदुपयोग केवल इसी मे है कि प्रजनन या सन्तानोत्पत्ति के लिए ही उसका उपयोग किया जाय और उसका अन्य कोई उपयोग दुरुपयोग ही है, यह बात ठीक है या नहीं? अगर यह ठीक है, तो फिर दुरुपयोग को रोककर सदुपयोग पर जाने मे कितनी ही कठिनाई क्यो न हो, उससे वैज्ञानिक शोधक को घबराना नहीं चाहिए।

ह० से०, ४-४-३६

: ७ :

सुधारक बहनों से

एक बहिन से गम्भीरतापूर्वक मेरी जो बातचीत हुई उससे मुझे भय होता है कि कृत्रिम सन्तति-निरोध-सम्बन्धी मेरी स्थिति को अभीतक लोगो ने काफी अच्छी तरह नही समझा। कृत्रिम सन्तति-निरोध के साधनो का मै जो विरोध करता हूँ वह इस

कारण नहीं कि वे हमारे यहाँ पश्चिम से आये हैं। कुछ पश्चिमी चीजें तो हमारे लिए वैसी ही उपयोगी है जैसी कि वे पश्चिम के लिए है और कृतज्ञता के साथ मैं उनका प्रयोग भी करता हूँ। अतएव कृत्रिम सन्तति-निरोध के साधनो का मेरा विरोध तो केवल उनके गुण-दोष की दृष्टि से ही है।

मै यह मानता हूँ कि कृत्रिम सन्तति-निग्रह के साधनो का प्रतिपादन करनेवालो मे जो सबसे अधिक बुद्धिमान हैं वे उन्हे उन स्त्रियो तक ही मर्यादित रखना चाहते है, जो सन्तानोत्पत्ति से बचते हुए अपनी और अपने पतियो की विषयवासना को तृप्त करना चाहती है, लेकिन मेरे खयाल मे, मानवप्राणियो मे यह इच्छा अस्वाभाविक है और इसको तृप्त करना मानव-कुटुम्ब की आध्यात्मिक प्रगति के लिए घातक है। इसके खिलाफ अन्य बातो के साथ अक्सर पेन के लार्ड डासन की यह राय पेश की जाती है—

"विषय-सम्बन्धी प्रेम ससार की एक प्रचण्ड और प्रधान शक्ति है। हमारे अन्दर यह भावना इतनी तीव्र, मौलिक और बलवती होती है कि हमे इसके प्रभाव को तथ्य रूप मे स्वीकार करना ही होगा, आप इसका दमन नहीं कर सकते। आप चाहे तो इसे अच्छे रूप मे परिणत कर सकते है, किन्तु इसके प्रवाह को रोक नहीं सकते। और यदि इसके प्रवाह का स्रोत अपर्याप्त या जरूरत से ज्यादा प्रतिबन्ध-युक्त हुआ तो यह अनियमित

स्रोतो से निकल पडेगा। आत्म-सयम मे हानि की सम्भावना रहती है। और यदि किसी जाति मे विवाह होने मे कठिनाई होती हो या वहुत देर मे जाकर विवाह होते हो तो उसका अनिवार्य परिणाम यह होगा कि अनुचित सम्बन्धो की वृद्धि हो जायगी। इस वात को तो सभी मानते है कि शारीरिक सहवास तभी होना चाहिए जब मन और आत्मा भी उसके अनुकूल हो, और इस वात पर भी सव सहमत है कि सन्तानोत्पत्ति ही उसका प्रधान उद्देश्य है, लेकिन क्या यह सच नही है कि वारम्वार हम जो सम्भोग करते है वह हमारे प्रेम का शारीरिक प्रदर्शन ही होता है, जिसमे सन्तानोत्पत्ति का कोई विचार या इरादा नही होता ! तो क्या हम सव गलती ही करते आरहे है ? या, यह वात है कि धर्म का हमारे वास्तविक जीवन से आवश्यक सम्पर्क नही है, जिसके कारण उसके और सर्वसाधारण के वीच खाई पड़ गई है ? जव तक किसी सत्ता या शासक का, और धर्माधिकारियो का भी मै इन्ही मे शुमार करता हूँ, एख नौजवानो के प्रति अधिक स्पष्ट, अधिक साहसपूर्ण और वास्तविकता के अधिक अनुकूल न होगा तवतक उनकी वफादारी कभी प्राप्त नही होगी।

"फिर सन्तानोत्पत्ति के अलावा भी विपय-प्रेम का अपना प्रयोजन है। विवाहित जीवन मे स्वस्थ और सुखी रहने के लिए यह अनिवार्य है। वैपयिक सहवास यदि परमेश्वर की देन है तो उसके उपयोग का ज्ञान भी प्राप्त करने के लायक है। अपने क्षेत्र मे यह इस तरह पैदा किया जाना चाहिए जिससे न केवल

एक की, बल्कि सम्भोग करनेवाले स्त्री-पुरुष दोनो की शारीरिक तृप्ति हो। इस तरह एक-दूसरे को जो पारस्परिक आनन्द प्राप्त होगा उससे उन दोनो मे एक स्थायी बन्धन स्थापित होगा, उससे उनका विवाह-सम्बन्ध स्थिर होगा। अत्यधिक विषय-प्रेम से उतने विवाह असफल नहीं होते जितने कि अपर्याप्त और बेढगे वैषयिक प्रेम से होते हैं। काम-वासना अच्छी चीज है, ऐसे अधिकांश व्यक्ति जो किसी भी रूप मे अच्छे हैं, काम-भावना रखने मे समर्थ हैं। काम-भावना-विहीन विषय-प्रेम तो बिल्कुल बेजान चीज है। दूसरी ओर ऐयाशी पेटूपन के समान एक शारीरिक क्षति है। अब चूँकि 'प्रार्थना-पुस्तक' के परिवर्द्धन पर विचार हो रहा है, मै यह बडे आदर के साथ सुझाना चाहता हूँ कि उसके विवाह-विधान मे यह और जोड दिया जाय कि 'स्त्री और पुरुष के पारस्परिक प्रेम की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति ही विवाह का उद्देश्य है।'

"अब मै यह सब छोडकर सन्तति-निग्रह के सबसे जरूरी प्रश्न पर आता हूँ। सन्तति-निग्रह स्थायी होने के लिए आया है। वह तो अब जम चुका है---और अच्छा हो या बुरा, उसे हमको स्वीकार करना ही होगा। इन्कार करने से उसका अन्त नहीं होगा। जिन कारणो से प्रेरित होकर अभिभावक लोग सन्तति-निग्रह करना चाहते है, उनमे कभी-कभी तो स्वार्थ होता है, लेकिन वे बहुधा आदरणीय और उचित ही होते है। विवाह करके अपनी सन्तान को जीवन-सघर्ष के योग्य बनाना, मर्यादित आय, जीवन-निर्वाह का खर्च, विविध करो का बोझ—ये सब इसके लिए जोर-

दार कारण है। और फिर शिक्षितवर्ग के अन्दर स्त्रियाँ अपने पतियो के काम-धन्धो तथा सार्वजनिक जीवन मे भाग लेने की भी इच्छा करती है। यदि वे बार-बार गर्भवती होती रहे तो वे इच्छाये पूरी नही हो सकती। यदि सन्तति-निग्रह के कृत्रिम साधनो का सहारा न लिया जाय तो देर मे विवाह करने का तरीका अख्तियार करना पड़ेगा, लेकिन ऐसा होने पर उसके साथ अनुचित (गुप्त) रूप से अपनी विपयेच्छा तृप्त करने के विविध दुष्परिणाम सामने आयेगे। एक ओर तो हम ऐसे अनुचित सम्बन्धो की बुराई करे और दूसरी ओर विवाह के मार्ग मे बाधाये उपस्थित करे तो उससे कोई लाभ न होगा। बहुत-से लोग कहते है, 'सम्भव है कि सन्तति-निग्रह आवश्यक हो, परन्तु एक-मात्र जिस उपाय से सन्तति-निग्रह करना ठीक हो सकता है वह तो स्वेच्छापूर्ण संयम ही है, लेकिन ऐसा सयम या तो व्यर्थ होगा या यदि उसका कोई असर पड़ा तो वह अव्यावहारिक और स्वास्थ्य व सुख के लिए हानिकर होगा।' परिवार के लिए, मान लो, हम चार बच्चो की मर्यादा बनाले, तो यह विवाहित स्त्री-पुरुप के लिए एक तरह का संयम ही होगा, जो देर-देर मे सन्तानोत्पत्ति होने के कारण ब्रह्मचर्य के समान ही माना जायगा। और जब हम इस बात पर ध्यान दे कि आर्थिक कठिनाई के कारण विवाहित जीवन के प्रारम्भिक वर्षो मे बहुत कठोर संयम करना पड़ेगा, जबकि विपयेच्छा बहुत प्रबल रहती है, तो मै कहता हूँ कि वह इच्छा इतनी तीव्र होगी कि अधिकाश व्यक्तियो के लिए उसका दमन

करना असम्भव होगा और यदि उसे जबर्दस्ती दबाने का यत्न किया गया तो स्वास्थ्य और सुख पर उसका बहुत बडा असर पडेगा और नैतिकता के लिए भी वह बहुत खतरनाक होगा। यह तो बिल्कुल अस्वाभाविक बात है। यह तो वही बात हुई कि प्यासे आदमी के पास पानी रखकर उसे कहा जाय कि खबरदार, इसे पीना मत। नहीं, सयम द्वारा सन्तति-निग्रह से कोई लाभ न होगा। और यदि इसका असर हुआ भी तो वह विनाशक होगा।

'यह तो अस्वाभाविक और मूलत अनैतिक बात कही जाती है। सभ्यता का तो काम ही यह है कि प्राकृतिक शक्तियो को वश मे करके उन्हे इस तरह परिणत कर लिया जाय कि मनुष्य अपनी इच्छानुसार उनका उपयोग कर सके। बच्चा आसानी से पैदा करने के लिए जब पहले-पहल औजारो (Anaesthetics) का प्रयोग शुरू हुआ तो यही शोर मचाया गया था कि ऐसा करना अस्वाभाविक और अधार्मिक काम है; क्योकि प्रसव-पीडा सहने के लिए ही तो भगवान् ने स्त्रियो को बनाया है। यही बात कृत्रिम साधनो से सन्तति-निग्रह करने की है, उसमे भी इससे अधिक कोई अस्वाभाविकता नहीं है। उनका प्रयोग तो अच्छा ही है, अलबत्ता दुरुपयोग नहीं करना चाहिए। अन्त मे क्या मै यह प्रार्थना करूँ कि धर्माधिकारी लोग इस प्रश्न का विचार करते समय इन पुरातन परम्पराओ की परवा नहीं करेगे जो अब व्यर्थ-सी हो गई हैं, बल्कि ऐसे ही अन्य कुछ प्रश्नो की तरह, नये संसार की आव-

श्यकताओ और आधुनिक ज्ञान के प्रकाश मे ही इस प्रश्न पर विचार करेगे ? "

यह कितने बड़े डाक्टर है इससे इन्कार नही किया जा सकता; लेकिन डाक्टर के रूप मे उनका जो बड़प्पन है, उसके लिए काफी आदर का भाव रखते हुए भी मै इस बात पर सन्देह करने का साहस करता हूँ कि उनका यह कथन कहाँ तक ठीक है, खास-कर उस हालत मे जबकि यह उन स्त्री-पुरुषो के अनुभव के विप-रीत है, जिन्होने आत्म-संयम का जीवन बिताया है; किन्तु उससे उनकी कोई नैतिक या शारीरिक हानि नही हुई। वस्तुत: बात यह है कि डाक्टर लोग आमतौर पर उन्ही लोगो के सम्पर्क मे आते है जो स्वास्थ्य के नियमो की अवहेलना करके कोई-न-कोई बीमारी मोल ले लेते है। इसलिए बीमारो को अच्छा होने के लिए क्या करना चाहिए यह तो वे अक्सर सफलता के साथ बता देते है, लेकिन यह बात वे हमेशा नही जानते कि स्वस्थ स्त्री-पुरुष किसी खास दिशा मे क्या कर सकते है ? अतएव विवाहित स्त्री-पुरुषो पर संयम के जो असर पड़ने की बात लार्ड डासन कहते है उसे अत्यन्त सावधानी के साथ ग्रहण करना चाहिए। इसमे सन्देह नही कि विवाहित स्त्री-पुरुष अपनी विषय-तृप्ति को स्वत. कोई बुराई नही मानते, उनकी प्रवृत्ति उसे वैध मानने की ही है, लेकिन आधुनिक युग मे तो कोई बात स्वय सिद्ध नही मानी जाती और हरेक चीज की बारीकी से छान-बीन की जाती है। अत. यह मानना सरासर गलती होगी कि चूँकि अबतक हम विवाहित-

जीवन में विषय-भोग करते रहे हैं इसलिए ऐसा करना ठीक ही है या स्वास्थ्य के लिए उसकी आवश्यकता है। बहुत-सी पुरानी प्रथाओं को हम छोड़ चुके हैं, और उसके परिणाम अच्छे ही हुए हैं। तब इस खास प्रथा को ही उन स्त्री-पुरुषों के अनुभव की कसौटी पर क्यों न कसा जाय, जो विवाहित होते हुए भी एक-दूसरे की सहमति से संयम का जीवन व्यतीत कर रहे हैं और उससे नैतिक तथा शारीरिक दोनों तरह का लाभ उठा रहे हैं ?

लेकिन मैं तो, इसके अलावा, विशेष आधार पर भी भारत में सन्तति-निग्रह के कृत्रिम साधनों का विरोधी हूँ। भारत में नवयुवक यह नहीं जानते कि विषय-दमन क्या है ? इसमें उनका कोई दोष नहीं है। छोटी उम्र में ही उनका विवाह हो जाता है, यह यहाँ की प्रथा है, और विवाहित जीवन में संयम रखने को उनसे कोई नहीं कहता। माता-पिता तो अपने नाती-पोते देखने के उत्सुक रहते हैं। बेचारी बाल-पत्नियों से उनके आस-पास वाले यही आशा करते हैं कि जितनी जल्दी हो वे पुत्रवती हो जायँ। ऐसे वातावरण में सन्तति-निरोधक कृत्रिम साधनों से तो कठिनाई और बढ़ेगी ही। जिन बेचारी लड़कियों से यह आशा की जाती है कि वे अपने पतियों की इच्छा-पूर्ति करेंगी, उन्हें अब यह और सिखाया जायगा कि वे बच्चे पैदा होने की इच्छा तो न करें, पर विषय-भोग किये जायँ, इसी में उनका भला है। और इस दुहरे उद्देश्य की सिद्धि के लिए उन्हें सन्तति-निरोध के कृत्रिम साधनों का सहारा लेना होगा !!!

मै तो विवाहित वहनो के लिए इस शिक्षा को वहुत घातक समझता हूँ। मै यह नहीं मानता कि पुरुष की ही तरह स्त्री की काम-वासना भी अदम्य होती है। मेरी समझ मे, पुरुष की अपेक्षा स्त्री के लिए आत्म-संयम करना ज्यादा आसान है। हमारे देश मे जरूरत बस इसी बात की है कि स्त्री अपने पति तक से 'न' कह सके, ऐसी सुशिक्षा स्त्रियो को मिलनी चाहिए। स्त्रियो को हमे यह सिखा देना चाहिए कि वे अपने पतियो के हाथ की कठपुतली या औजार मात्र वन जायँ, यह उनके कर्त्तव्य का अग नहीं है। और कर्त्तव्य की ही तरह उनके अधिकार भी है। जो लोग सीता को राम की आज्ञानुवर्त्तिनी दासी के रूप मे ही देखते है वे इस बात को महसूस नहीं करते कि उनमे स्वाधीनता की भावना कितनी थी और राम हरेक बात मे उनका कितना खयाल रखते थे। भारत की स्त्रियो से सन्तति-निरोध के कृत्रिम साधन अख्तियार करने के लिए कहना तो बिल्कुल उल्टी बात है। सवसे पहले तो उन्हे मानसिक दासता से मुक्त करना चाहिए, उन्हे अपने शरीर की पवित्रता की शिक्षा देकर राष्ट्र और मानवता की सेवा मे कितना गौरव है, इस बात की शिक्षा देनी चाहिए। यह सोच लेना ठीक नहीं है कि भारत की स्त्रियो का तो उद्धार ही नही हो सकता, और इसलिए सन्तानोत्पत्ति मे रुकावट डालकर अपने रहे-सहे स्वास्थ्य की रक्षा के लिए उन्हे सिर्फ सन्तति-निग्रह के कृत्रिम साधन ही सिखा देने चाहिए।

जो बहने सचमुच उन स्त्रियो के दुःख से दुःखी है, जिन्हे

इच्छा हो या न हो फिर भी बच्चो के झमेले मे पड़ना पडता है, उन्हे अधीर नही होना चाहिए। वे जो-कुछ चाहती है, वह एक-दम तो कृत्रिम सन्तति-निरोध के साधनो के पक्ष मे आन्दोलन से भी नहीं होने वाला है। हरेक उपाय के लिए सवाल तो शिक्षा का ही है। इसलिए मेरा कहना यही है कि वह हो अच्छे ढग की।

ह० से० २-५-३६

: ८ :

फिर वही संयम का विषय

एक सज्जन लिखते हैं —

"इन दिनो आपने ब्रह्मचर्य पर जो लेख लिखे हैं, उनसे लोगो मे खलबली-सी मच गई है। जिनकी आपके विचारो के साथ सहानुभूति है उन्हे भी लम्बे अर्से तक सयम रख सकना मुश्किल पड रहा है। उनकी यह दलील है कि आप अपना ही अनुभव और अभ्यास सारी मानव जाति पर लागू कर रहे हैं, परन्तु आप खुद ने भी तो कबूल किया है कि आप पूरे ब्रह्मचारी की शर्तें पूरी नही कर सकते, क्योकि आप स्वय विकार से खाली नही है। और चूँकि आप यह भी मानते हैं कि दम्पति को सन्तान की सख्या सीमित रखने की जरूरत है, इसलिए अधिकाश मनुष्यो के लिए तो एक यही व्यावहारिक उपाय है कि वे सन्तति-निरोध के कृत्रिम-साधन काम मे लावे।"

मै अपनी मर्यादाये स्वीकार कर चुका हूॅ। इस विवाद मे तो ये ही मेरे गुण है। कारण, मेरी मर्यादाओ से यह स्पष्ट हो जाता है कि मै भी अधिकांश मनुष्यो की भॉति दुनियावी आदमी हूॅ और असाधारण गुणवान् होने का मेरा दावा भी नहीं है। मेरे सयम का हेतु भी बिल्कुल मामूली था। मै तो देश या मनुष्य-समाज की सेवा के खयाल से सन्तान-वृद्धि रोकना चाहता था। देश या समाज की सेवा की बात दूर की है। इसकी अपेक्षा वडे कुटुम्व का पालन न कर सकना सन्तति-नियमन के लिए अधिक प्रबल कारण होना चाहिए। वर्तमान दृष्टिकोण से इस पैतीस वर्ष के संयम मे मुझे सफलता मिली है। फिर भी मेरा विकार नष्ट नहीं हुआ है और उसके विषय मे मुझे आज भी जागरूक रहने की जरूरत है। इससे भलीभॉति सिद्ध है कि मै बहुत-कुछ साधारण मनुष्य हूॅ। इसीलिए मेरा कहना है कि जो बात मेरे लिए सम्भव हुई है वही दूसरे किसी भी प्रयत्नशील मनुष्य के लिए संभव हो सकती है।

कृत्रिम उपायो के समर्थको के साथ मेरा झगडा इस वात पर है कि वे यह मान बैठे है कि मामूली मनुष्य संयम रख ही नही सकता। कुछ लोग तो यहॉतक कहते है कि यदि वह समर्थ हो भी तो उसे संयम नही रखना चाहिए। ये लोग अपने क्षेत्र मे कितने भी बड़े आदमी हो, मै अत्यन्त विनम्रता किन्तु विश्वास के साथ कहूॅगा कि उन्हें इस वात का अनुभव नहीं है कि संयम से क्या-क्या हो सकता है। उन्हे मानवीय आत्मा के मर्यादित करने का

कोई हक नहीं है। ऐसे मामलो मे मेरे-जैसे एक आदमी की निश्चित गवाही भी, यदि वह विश्वस्त हो, तो न केवल अधिक मूल्यवान है, बल्कि निर्णायक भी है। सिर्फ इसी वजह से कि मुझे लोग 'महात्मा' समझते है, मेरी गवाही को निकम्मी करार दे देना गम्भीर खोज की दृष्टि से उचित नहीं है।

परन्तु एक बहन की दलील और भी जोरदार है। उनके कहने का मतलब यह है—"हम कृत्रिम उपायो के समर्थक लोग तो हाल ही मे सामने आये है। मैदान आप सयम के समर्थको के हाथ मे पीढियो से, शायद हजारो वर्ष से, रहा है, तो आप लोगो ने क्या कर दिखाया ? क्या दुनिया ने सयम का सबक सीख लिया है ? बच्चो के भार से लदे हुए परिवारो की दुर्दशा रोकने के लिए आप लोगो ने क्या किया है ? आहत माताओ की पुकार को आप लोगो ने सुना है ? आइए, अब भी मैदान आप लोगो के लिए खाली है। आप संयम का समर्थन करते रहिए, हमे इसकी चिन्ता नहीं है, और अगर आप पतियो की जबर्दस्ती से स्त्रियो को बचा सके तो हम आपकी सफलता भी चाहेगे, मगर आप हमारे तरीको की निन्दा क्यो करते है ? हम तो मनुष्य की साधारण कमजोरियो और आदतो के लिए गुंजाइश रखकर चलते है और हम जो उपाय करते है अगर उनका ठीक-ठीक प्रयोग किया जाय, तो वे करीब-करीब अचूक साबित होते है।"

इस व्यंग मे स्त्री-हृदय की पीडा भरी हुई है। जो कुटुम्ब

बच्चो की बढ़ती हुई संख्या के मारे सदा दरिद्र रहते है, उनके लिए इस बहन का हृदय दया से भर गया है। यह सभी जानते है कि मानवीय दु ख की पुकार पत्थर के दिलो को भी पिघला देती है। भला यह पुकार उच्चात्मा बहनो को प्रभावित किये बिना कैसे रह सकती है ? पर अगर हम भावावेश मे बह जायँ और डूबते की तरह किसी भी तिनके का सहारा ढूँढने लगे तो ऐसी पुकार हमे आसानी से गुमराह भी कर सकती है।

हम ऐसे जमाने मे रह रहे है, जिसमे विचार और उनके महत्व बहुत जल्दी-जल्दी बदल रहे है। धीरे-धीरे होनेवाले परिणामो से हमको सन्तोष नही होता। हमे अपने इन सजातीय, बल्कि केवल अपने ही देश की भलाई से तसल्ली नही होती। हमे सारे मानव-समाज का खयाल होता है, मानवता की उद्देश्य-सिद्धि मे यह कम सफलता नही है।

परन्तु मानवी दु खो का इलाज धीरज छोड़ने से नही होगा और न सब पुरानी बातो को सिर्फ पुरानी होने की वजह से छोड़ देने से होगा। हमारे पूर्व जन्म मे भी वे ही स्वप्न देखे थे जो आज हमे उत्साह से अनुप्राणित कर रहे हैं। शायद उन स्वप्नो मे इतनी स्पष्टता न रही हो। यह भी सम्भव है कि एक ही प्रकार के दु खो का जो उपाय उन्होने बताया वह हमारे मानस के आशातीत रूप मे विशाल हो जाने पर भी लागू हो। और मेरा दावा तो निश्चित अनुभव के आधार पर यह है कि जिस तरह सत्य और अहिसा मुट्ठी-भर लोगो के लिए ही नही है, बल्कि सारे

मनुष्य-समाज के लिए रोजमर्रा के काम की चीजे है, ठीक इसी तरह सयम थोडे से महात्माओ के लिए नही, बल्कि सब मनुष्यो के लिए है। और जिस तरह बहुत-से आदमियो के झूठे और हिसक होने पर भी मनुष्य-समाज को अपना आदर्श नीचा नही करना चाहिए, इसी प्रकार यदि बहुत-से या अधिकाश लोग भी संयम का सदेश स्वीकार न कर सके तो इस विषय मे भी हमे अपना आदर्श नीचा नही करना चाहिए।

बुद्धिमान् न्यायाधीश वह है जो विकट मामला सामने होने पर भी गलत फैसला नही करता। लोगो की नजरो मे वह अपने को कठोर हृदय बन जाने देगा, क्योकि वह जानता है कि कानून को बिगाड देने मे सच्ची दया नही है। हमे नाशवान शरीर या इन्द्रियो की दुर्बलता को भीतर विराजमान अविनाशी आत्मा की दुर्बलता नही समझ लेना चाहिए। हमे तो आत्मा के नियमानुसार शरीर को साधना चाहिए। मेरी विनम्र सम्मति मे ये नियम थोड़े से और अटल हैं और इन्हे सभी मनुष्य समझ और पाल सकते हैं। इन नियमो को पालने मे कम-ज्यादा सफलता मिल सकती है, पर ये लागू तो सभी पर होते हैं। अगर हममे श्रद्धा है तो उसे सिर्फ इसीलिए नही छोड देना चाहिए कि मनुष्य-समाज को अपने ध्येय की प्राप्ति मे या उसके निकट पहुँचने मे लाखो बरस लगेंगे। 'जवाहरलाल' की भाषा मे, हमारी विचार-सरणी ठीक होनी चाहिए।

परन्तु उस बहन की चुनौती का जवाब देना तो बाक़ी ही

रह गया। संयमवादी हाथ-पर-हाथ धरे नही बैठे है। उनका प्रचार-कार्य जारी है। जैसे कृत्रिम साधनो से उनके साधन भिन्न है, वैसे ही उनका प्रचार का तरीका अलग है, और होना चाहिए। संयम-वादियो को चिकित्सालयो की जरूरत नही है, वे अपने उपायो का विज्ञापन भी नही कर सकते, क्योकि यह कोई बेचने या दे देने की चीजे तो है नही। कृत्रिम साधनो की टीका करना और उनके उपयोग से लोगो को सचेत करते रहना इस प्रचार-कार्य का ही अंग है। उनके कार्य का रचनात्मक पक्ष तो सदा रहा ही है, किन्तु वह तो स्वभावत ही अदृश्य होता है। संयम का समर्थन कभी बन्द नही किया गया है और इसका सबसे कारगर तरीका आचरणीय है। सयम का सफल अभ्यास करनेवाले सच्चे लोग जितने ज्यादा होगे उतना ही यह प्रचार-कार्य अधिक कारगर होगा।

ह० से० ३०--५--३६

: ९ :

संयम द्वारा सन्तति-निग्रह

निम्न लिखित पत्र मेरे पास बहुत दिनो पडा रहा —

"आजकल सारी ही दुनिया मे सन्तति-निग्रह का समर्थन हो रहा है। हिन्दुस्तान भी उससे बाहर नही। आपके संयम-सम्बन्धी लेखो को मैने पढ़ा है। संयम मे मेरा विश्वास है।

अहमदाबाद मे थोडे दिन पहले एक सन्तति-निग्रह-समिति स्थापित हुई है। ये लोग दवा, टिकियाँ, ट्यूब वगैरा का समर्थन करके स्त्रियो को हमेशा के लिए संभोगवती करना चाहते है।

मुझे आश्चर्य होता है कि जीवन के आखिरी किनारे पर बैठे हुए लोग किसलिए प्रजा के जीवन को निचोड डालने की हिमायत करते है।

इसके बजाय सन्तति-नियमन-संयम-समिति स्थापित की होती तो? आप गुजरात पधार रहे है, इसलिए मेरी ऊपर की प्रार्थना ध्यान मे रखकर गुजरात के नारी-तेज को प्रकाश दीजिएगा।

आज के डाक्टर और वैद्य मानते है कि रोगियो को संयम का पाठ सिखाने मे उनकी कमाई मारी जायगी और उन्हे भूखो मरना पडेगा।

इस प्रकार के सन्तति-निग्रह से समाज बहुत गहरे और अंधेरे खड्डे मे चला जायगा। उसे अगर ऊपर और प्रकाश मे रहना है, तो संयम को अपनाये बिना छुटकारा नही। बगैर संयम के मनुष्य कभी ऊचा नही चढ सकेगा। इससे तो जितना व्यभिचार आज है, उससे भी अधिक बढेगा। और फिर रोग का तो पूछना ही क्या ?"

इस बीच मे मै अहमदाबाद हो आया हूँ। उपर्युक्त विषय पर तो मुझे वहाँ अपने विचार प्रकट करने का अवसर मिला नहीं, पर लेखक के इस कथन को मै अवश्य मानता हूँ कि सन्तति का नियमन केवल संयम से ही सिद्ध किया जाय। दूसरी रीति

से नियमन करने मे अनेक दोप उत्पन्न होने की सम्भावना है। जहाँ इस नियमन ने घर कर लिया है, वहाँ दोप साफ दिखाई दे रहे हैं। इसमे कोई आश्चर्य नही, जो संयम-रहित नियमन के समर्थक इन दोपो को नही देख सकते, क्योकि संयम-रहित नियमन ने नीति के नाम से प्रवेश किया है।

अहमदाबाद मे जो समिति बनाई गई है, उसके हेतु के विषय मे यह कहना ज्यादती है कि लेखक ने जैसा लिखा है वह वैसा ही है, पर उसका हेतु चाहे जैसा हो, तो भी उसकी प्रवृत्ति का परिणाम तो अवश्य विपय-भोग बढ़ाने मे ही आना है। पानी को उँड़ेले तो वह नीचे ही जायगा, इसी तरह विपय-भोग बढानेवाली युक्तियाँ रची जायेंगी तो उनसे वह भोग बढेगा ही।

इसी प्रकार 'डाक्टर और वैद्य संयम का पाठ सिखावे तो उनकी कमाई मारी जायगी' इससे वे सयम नही सिखाते, ऐसा मानना भी ज्यादती है। संयम का पाठ सिखाना डाक्टर-वैद्यो ने अपना क्षेत्र आजतक माना नही, मगर डाक्टर और वैद्य इस तरफ ढलते जा रहे है, इस बात के चिन्ह जरूर नजर आते है। उनका क्षेत्र व्याधियो के कारण शोधने और रोग मिटाने का है। अगर वे व्याधियो के कारणो मे असंयम—स्वच्छन्द को अग्र स्थान न देगे तो यह कहना चाहिए कि उनका दिवाला निकलने का समय आ गया है। ज्यो-ज्यो जन-समाज की समझ-शक्ति बढ़ती जाती है, त्यो-त्यो उसे, अगर रोग जड़-मूल से नष्ट न हुआ तो, सन्तोप होने का नहीं। और जबतक जन-समाज संयम की ओर

नहीं टलेगा, व्याधियों को रोकने के नियमों का पालन नहीं करेगा, तबतक आरोग्य की रक्षा करना अशक्य है। यह इतना स्पष्ट है कि अन्त में इस पर सभी कोई ध्यान देंगे, और प्रामाणिक डाक्टर संयम के मार्ग पर अधिक-से-अधिक जोर देंगे। सयम-रहित निग्रह भोग बढ़ाने में अधिक-से-अधिक हाथ बँटायगा, इस विषय में मुझे तो शका नहीं। इसलिए अहमदाबाद की समिति अधिक गहरे उतर कर असयम के भयंकर परिणामों पर विचार करके स्त्रियों को सयम की सरलता और आवश्यकता का ज्ञान कराने में अपने समय का उपयोग करे, तो आवश्यक परिणाम प्राप्त हो सकेगा ऐसा मेरा नम्र अभिप्राय है।

ह० से० १७-१२-३६

: १० :

कैसी नाशकारी चीज़ है?

डा० मोखे और डा० मगलदास के बीच हाल ही में जो इस बारहमासी विषय अर्थात सन्तति-निरोध पर वाद-विवाद हुआ था, उससे मुझे परमादरणीय डा० अन्सारी के मत को प्रगट करने की हिम्मत हो रही है, जो डा० मगलदास के समर्थन मे है। करीबन एक साल की बात है। मैंने स्वर्गीय डा० साहब को लिखा था कि वैद्यक की दृष्टि से आप इस विवाद-ग्रस्त विषय मे मेरे मत का समर्थन कर सकते हैं या नहीं ? मुझे यह जान कर आश्चर्य

और खुशी हुई कि उन्होने तहेदिल से मेरा समर्थन किया। पिछली वार जव मै दिल्ली गया था, तव इस विपय मे उनसे मेरी रूवरू भी वातचीत हुई थी। और मेरे अनुरोध करने पर उन्होने अपने निजी तथा अपने अन्य व्यवसाय-वन्धुओ के अनुभव के आधार पर सप्रमाण अको सहित यह सिद्ध करने के लिए कि, इन कृत्रिम साधनो का उपयोग करनेवालो को कितनी जवर्दस्त हानि पहुँच रही है, एक लेख-माला लिखने का वचन दिया था। उन्होने तो उन मनुष्यो की दयनीय अवस्था का हूवहू वर्णन सुनाया था जो यह जानते हुए कि उनकी पत्नियाँ और अन्य स्त्रियाँ सन्तति-निरोध के कृत्रिम साधनो को काम मे ला रही है, उनसे कुछ दिन सम्भोग कर चुके थे। सम्भोग के स्वाभाविक परिणाम के भय से मुक्त होने पर वे अमर्याद भोग-विलास पर टूट पडे। नित्य नई-नई औरतो से मिलने की उन्हे अदम्य लालसा होने लगी और आखिर पागल होगये। आह! डाक्टर साहव अपनी उस लेख-माला को शुरू करने ही वाले थे कि चल वसे!

कहा जाता है कि वर्नार्डशा ने भी यही कहा है कि सन्तति-निरोधक साधनो का उपयोग करने वाले स्त्री-पुरुषो का सम्भोग तो प्रकृति-विरुद्ध वीर्यनाश से किसी प्रकार कम नही है। एक क्षण-भर सोचने से पता चल जायगा कि उनका कथन कितना यथार्थ है।

इस वुरी टेव के शिकार वनकर धीरे-धीरे अपने पौरुष से हाथ धो लेने वाले विद्यार्थियो के करुणाजनक पत्र तो मुझे करीव-

क़रीब रोज मिलते है। कभी-कभी शिक्षको के भी ख़त मिलते है। 'हरिजन सेवक' मे लाहौर के सनातनधर्म कालेज के आचार्य का जो पत्र-व्यवहार प्रकाशित हुआ था, वह भी पाठको को याद होगा, जिसमे उन्होने उन शिक्षको के विरुद्ध बडी बुरी तरह शिकायत की थी, जो अपने विद्यार्थियो के साथ अप्राकृतिक व्यभिचार करते थे। इससे उनके शरीर और चरित्र की जो दुर्गति हुई थी उसका भी जिक्र आचार्य जी ने अपने पत्र मे किया था। इन उदाहरणो से तो मै यही नतीजा निकालता हूँ, कि अगर पति-पत्नी के बीच भी मैथुन के स्वाभाविक परिणाम के भय से मुक्त होने की सभावना को लेकर सभोग होगा, तो उसका भी वही घातक परिणाम होगा, जो प्रकृति-विरुद्ध मैथुन से निश्चित रूप से होता है।

निस्सन्देह कृत्रिम साधनो के बहुत-से हिमायती परोपकार की भावना से ही प्रेरित होकर इन चीजो का अन्धाधुन्ध प्रचार कर रहे है, पर यह परोपकार अस्थायी है। मै इन भले आदमियो से अनुरोध करता हूँ कि वे इसके परिणामो का तो खयाल करे। वे गरीब लोग कभी पर्याप्त मात्रा मे इनका उपयोग नही कर सकेगे, जिन तक यह उपकारी पुरुष पहुँचना चाहते है। और जिन्हे इनका उपयोग नही करना चाहिए वे जरूर इनका उपयोग करेगे, और अपने और अपने साथियो का नाश करेगे, पर अगर यह पूरी तरह से सिद्ध हो जाता कि शारीरिक या नैतिक आरोग्य की दृष्टि से यह चीज लाभदायक है, तो यह भी सह

लिया जाता। इनके और भावी सुधारको के लिए डा० अन्सारी की राय--अगर उसके विपय मे मेरे शब्दो को कोई प्रामाण्य माने---एक गम्भीर चेतावनी है।

ह० से० १२-१०-३६

: ११ :

अरण्य-रोदन

"अभी हाल ही मे सन्तति-नियमन की प्रचारिका मिसेज सेगर के साथ आपकी मुलाकात पर एक समालोचना मैने पढी है। इसका मुझ पर इतना गहरा असर हुआ कि आपके दृष्टि-बिन्दु पर सन्तोप और पसन्दगी ज़ाहिर करने के लिए मै आपको यह पत्र लिखने बैठा हूं। आपकी हिम्मत के लिए ईश्वर सदा आपका कल्याण करे।

"पिछले तीस साल से मै लडको को पढाने का काम करता हूँ। मैने हमेशा उन्हे देह-दमन और निस्वार्थ जीवन बिताने के लिए तालीम दी है। जब मिसेज सेगर हमारे आस-पास प्रचार-कार्य कर रही थी, तब हाईस्कूल के लडके-लडकियाँ उनकी दी हुई सूचनाओ का उपयोग करने लग गए थे, और परिणाम का डर दूर हो जाने से उनमे खूब व्यभिचार चल पडा था। अगर मिसेज सेगर की शिक्षा कही व्यापक हो गई, तो सारा समाज विषय-सेवन के पीछे पड़ जायगा, और शुद्ध प्रेम का दुनिया से नामोनिशान तक मिट जायगा। मै मानता हूँ कि जनता को उच्च

आदर्शों की शिक्षा देने में सदियाँ लग जायगी ; पर यह काम शुरू करने के लिए अनुकूल-से-अनुकूल समय अभी है। मुझे डर है कि मिसेज सेंगर विषय को ही प्रेम समझ बैठी हैं, पर यह भूल है ; क्योंकि प्रेम एक आध्यात्मिक वस्तु है, विषय-सेवन से इसकी उत्पत्ति कभी नहीं हो सकती।

"डा० एलेक्सिस केरल भी आपके साथ इस बात में सहमत हैं कि सयम कभी हानिकारक सिद्ध नहीं होता, सिवाय उन लोगों के जो कि दूसरी तरह अपने विषयो को उत्तेजित करते हो और पहले से ही अपने मन पर काबू खो चुके हो। मिसेज-सेगर का यह बयान कि अधिकाँश डाक्टर यह मानते है कि ब्रह्म-चर्य-पालन से हानि होती है, बिल्कुल गलत है। मै तो देखता हूँ कि यहाँ कई बडे-बडे डाक्टर अमेरिकन सोश्यल हाईजीन (सामा-जिक आरोग्य-शास्त्र) के विज्ञान-शास्त्री ब्रह्मचर्य-पालन को लाभ-दायक मानते हैं।

"आप एक बड़ा नेक काम कर रहे हैं। मैं आपके जीवन-सग्राम के तमाम चढाव-उतारो का बहुत रसपूर्वक अध्ययन करता रहा हूँ। आप जगत् मे उन इने-गिने व्यक्तियों मे से हैं, कि जिन्होंने स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध के प्रश्न पर इस तरह उच्च आध्यात्मिक दृष्टि-बिन्दु से विचार किया है। मै आपको यह जताना चाहता हूँ कि महासागर के इस पार भी आपके आदर्शों के साथ सहानुभूति रखने वाला आपका एक साथी यहाँ पर है।

"इस नेक काम को जारी रखे, ताकि नवयुवक वर्ग सच्ची बात

को जान ले, क्योंकि भविष्य इसी वर्ग के हाथों में है।

"अपने विद्यार्थियों के साथ अपने संवाद में से मैं छोटा-सा उद्धरण यहाँ देना चाहता हूँ—'निर्माण करो, हमेशा निर्माण करो। निर्माण प्रवृत्ति में से तुम्हें श्रेय मिलेगा, उन्नति मिलेगी, उत्साह मिलेगा, उल्लास मिलेगा, पर अगर तुम अपनी निर्माण-शक्ति को आज विषय-तृप्ति का साधन बना लोगे, तो तुम अपनी रचना-शक्ति पर अत्याचार करोगे और तुम्हारे आध्यात्मिक बल का नाश हो जायगा। रचना-प्रवृत्ति—शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक—का नाम जीवन है, यही आनन्द है। अगर तुम प्रजोत्पत्ति के हेतु के बिना या सन्तति का निरोध करके विषय-सेवन द्वारा सिर्फ इन्द्रिय-सुख प्राप्त करने का प्रयत्न करोगे, तो तुम प्रकृति के नियम का भंग और अपनी आध्यात्मिक शक्तियों का हनन करोगे। इसका परिणाम क्या होगा? अनिवार विषयाग्नि धधक उठेगी। और आखिर निराशा तथा असफलता में अन्त होगा। इससे तो हम कभी उन उच्च गुणों का विकास नहीं कर पायेंगे, जिनके बल पर हम उस नवीन मानव-समाज की रचना कर सकें जिसमें कि, दिव्यात्मा स्त्री-पुरुष हों।'

"मैं जानता हूँ, कि यह सब पूर्व काल के नबियों के अरण्य-रोदन जैसी बात है, पर मेरा पक्का विश्वास है कि यही सच्चा रास्ता है। और मुझसे अधिक कुछ चाहे न भी बन पड़े, मैं कम-से-कम उंगली दिखा कर तो अपना समाधान करलूँ।"

संतति-नियमन के कृत्रिम साधनों का निषेध करने वाले जो

पत्र मुझे कभी-कभी अमेरिका मे मिलते रहते हैं, उन्हीं में से यह भी एक है। पर सुदूर पश्चिम से हर हफ्ते हिन्दुस्तान मे जो सामाजिक साहित्य आता रहता है, उससे तो पढनेवाले के दिल पर बिल्कुल जुदा ही असर पड़ता है। यही मालूम होता है, मानों अमेरिका मे तो सिवा बेवकूफों के कोई भी इन आधुनिक साधनो का विरोध नहीं करते हैं, जो मनुष्य को उस अन्ध-विश्वास से मुक्ति प्रदान करते हैं, जो अब तक शरीर को गुलाम बना कर संसार के सर्वश्रेष्ठ ऐहिक सुख से मनुष्य को वंचित करके उसके शरीर को निष्प्राण बना देने की शिक्षा देता चला आ रहा है। यह साहित्य भी उतना ही क्षणिक नशा पैदा करता है, जितना कि वह कर्म, जिसकी वह शिक्षा देता है और जिसे उसके साधारण परिणाम के खतरे से बचकर करने को प्रोत्साहन देता है। पश्चिम से आने वाले केवल उन पत्रो को मै 'हरिजन' के पाठको के सामने नहीं पेश करता, जिनमे व्यक्तिगत रूप से इन साधनो का निषेध होता है। वे तो साधक की दृष्टि से मेरे लिए उपयोगी हैं। साधारण पाठको के लिए उनका मूल्य बहुत कम है, पर यह पत्र खास तौर पर एक महत्व रखता है, क्योंकि यह एक ऐसे शिक्षक का है, जिसे तीस वर्ष का अनुभव है। यह हिन्दुस्तान के उन शिक्षको और जनता (स्त्री-पुरुष) के लिए खास तौर पर मार्ग-दर्शक है, जो उस ज्वार के प्रबल प्रवाह मे बहे जा रहे हैं। सन्तति-नियामक साधनो के प्रयोग में शराब से अनन्त-गुना प्रबल प्रलोभन होता है, पर इस मारक प्रलोभन के कारण वह उस चमकीली

शराब की अपेक्षा अधिक जायज नही है। और चूँकि इन दोनो का प्रचार बढता ही जा रहा है, इस कारण निराश होकर इनका विरोध करना भी नहीं छोड़ा जा सकता है। अगर इनके विरोधियो को अपने कार्य की पवित्रता मे श्रद्धा है, तो उन्हे उसे बराबर जारी रखना चाहिए। ऐसे अरण्य-रोदन मे भी वह बल होता है कि जो मूढ़ जन-समुदाय के सुर-मे-सुर मिलाने वाले की आवाज मे नही हो सकता, क्योकि जहाँ अरण्य मे रोने वाले की आवाज मे चिन्तन और मनन के अलावा अटूट श्रद्धा होती है, तहाँ इस सर्वसाधारण के इस शोर की जड मे विषय-भोग की व्यक्तिगत लालसा और अनचाही सन्तति तथा दुखिया माताओ के प्रति झूठी और निरी भावुक सहानुभूति के अलावा और कुछ नही होता। और इस मामले मे व्यक्तिगत अनुभव वाली दलील मे तो उतनी ही बुद्धि है, जितनी कि एक शराबी के किसी कार्य मे होती है। और सहानुभूति वाली दलील एक धोखे की टट्टी है, जिसके अन्दर पैर भी रखना खतरनाक है। अनचाहे बच्चो के तथा मातृत्व के कष्ट तो कल्याणकारी प्रकृति द्वारा नियोजित सजाएँ और हिदायते है। संयम और इन्द्रिय-नियमन के कानून की जो पर्वा नहीं करेगा, वह तो एक तरह से अपनी खुद-कुशी ही कर लेगा। यह जीवन तो एक परीक्षा है। अगर हम इन्द्रियो का नियमन नही कर सकते, तो हम असफलता को न्यौता देते है। कायरो की तरह हम युद्ध से मुँह मोड कर जीवन के एक-मात्र आनन्द से अपने आप को वंचित करते है। ह० से० २७-३-३७

: १२ :

आश्चर्यजनक, अगर सच है!

खॉसाहब अब्दुलगफ्फारखॉ और मै सवेरे और शाम जब घूमने जाते है तो हमारी बात-चीत अक्सर ऐसे विषयो पर हुआ करती है, जो सभी के हित के होते है। खॉसाहब सरहदी इलाको मे, यहॉ तक कि काबुल और उसके भी आगे काफी घूमे है, और सरहदी कबीलो के बारे मे उनकी बडी अच्छी जानकारी है। इस-लिए वह अक्सर वहॉ के सीधे-सादे लोगो की आदतो और रस्म-रिवाजो के बारे मे मुझे बतलाया करते है। वह मुझे बताते है कि इन लोगो की मुख्य खुराक, जो इस सभ्यता की हवा से अब-तक अछूते ही है, मक्के और जौ की रोटी और मसूर है। वक्तन फव-क्तन छाछ भी ले लिया करते है। ये गोश्त खाते है, पर बहुत कम। मैने समझा कि उनकी मशहूर दिलेरी का एक-मात्र कारण उनकी खुली हवा मे रहना और वहॉ का अच्छा शक्तिवर्द्धक जल-वायु ही है। 'नहीं, सिर्फ यही बात नहीं है' खॉसाहब ने उसी वक्त कहा, 'इनमे जो ताकत व दिलेरी है उसका भेद तो हमे उनके सयमी जीवन मे मिलता है। शादी वे, मर्द व औरते दोनो ही, पूरी जवानी की उम्र मे जाकर करते है। बेवफाई, व्यभिचार या अविवाहित प्रेम को तो वे जानते ही नहीं। शादी से पहले सहवास करने की सजा वहॉ मौत है। इस तरह का गुनाह करने वाले की जान लेने का उन्हे हक़ है।'

अगर यह संयम या इन्द्रिय-निग्रह वहाँ इतना व्यापक है, जैसा कि खाँसाहब बतलाते है, तो इससे हमे हिन्दुस्तान मे एक ऐसा सबक़ मिलता है, जो हमे हृदयगम कर लेना चाहिए। मैने खाँसाहब के आगे यह विचार रखा कि उन लोगो के कदावर और दिलेर होने का एक बहुत बडा सबब अगर उनका सयमी जीवन है, तो मन और शरीर के बीच पूरा सहयोग होना ही चाहिए, क्योकि अगर मन तो विषय-तृप्ति के पीछे पडा रहा और शरीर ने निग्रह किया, तो इससे प्राण-शक्ति का इतना भयकर नाश होगा कि शरीर मे कुछ भी नही बच रहेगा। खाँसाहब मान गये कि यह अनुमान ठीक है। । उन्होने कहा कि जहाँ तक मै इसकी जाँच कर सका हूँ, मुझे लगता है कि वे लोग सयम के इतने ज्यादा आदी हो गये है कि नौजवान मर्दों और औरतो का शादी से पहले विषय-तृप्ति करने का कभी मन ही नही होता। खाँसाहब ने मुझ से यह भी कहा कि उन इलाको की औरते कभी पर्दा नही करती, वहाँ झूठी लज्जा नही है, औरते निडर है, चाहे जहाँ आजादी से घूमती है, और अपनी सम्भाल खुद कर सकती है, अपनी इज्जत-आबरू बचा सकती है, किसी मर्द से व अपनी रक्षा नही कराना चाहती, उन्हे जरूरत भी नही। तो भी खाँ-साहब यह मानते है कि उनका यह सयम बुद्धि या जीती-जागती श्रद्धा पर आधार नही रखता, इसलिए जब ये पहाड़ो के रहने वाले लोग सभ्य या नजाकत की जिन्दगी के सम्पर्क मे आते है, तो उनका वह संयम टूट जाता है। सभ्यता के सम्पर्क मे आकर

जब वे अपनी पुरानी बात छोड देते है, तो उन्हे इसके लिए कोई सजा नहीं मिलती और उनकी बेवफाई और व्यभिचार को पब्लिक कम या ज्यादा उपेक्षा की नजर से देखती है। इसमे ऐसे विचार सामने आजाते हैं, जिनकी कि मुझे फिलहाल चर्चा नहीं करनी चाहिए। यह लिखने का तो अभी मेरा यह मतलब है कि खॉसाहब की ही तरह जो लोग इन फिरकोके आदमियो के बारे मे जानकारी रखते हों, और उनके कथन का समर्थन करते हो, उनसे इस पर और भी रोशनी डलवाई जाय, और मैदानो मे रहने वाले नौजवानो और युवतियो को बतलाया जाय कि संयम का पालन, अगर वह इन पहाडी फिरको के लिए सच-मुच स्वाभाविक चीज है, जैसा कि खॉसाहब का ख्याल है, तो हम लोगो के लिए भी उसे उतना ही स्वाभाविक होना चाहिए—अगर अच्छे-अच्छे विचारो को हम अपने विचार-जगत मे बसाले, और यो ही घुस आने वाले बाधक विचारो या विषय-विकारो को जगह न दे। दरअसल, अगर सद् विचार काफी बडी सख्या मे हमारे मन में बस जायॅ, तो बाधक विचार वहॉ ठहर ही नही सकते। अवश्य इसमे साहस की जरूरत है। आत्म सयम कायर आदमी को कभी हासिल नहीं होता। आत्म-सयम तो प्रार्थना और उपवास-रूपी जागरूकता और निरन्तर प्रयत्न का सुन्दर फल है। अर्थ-हीन स्तोत्र-पाठ प्रार्थना नही है, न शरीर को भूखो मारना उपवास है, प्रार्थना तो उसी हृदय से निकलती है, जिसे कि ईश्वर का श्रद्धा-पूर्वक ज्ञान है, और उपवास का अर्थ है बुरे या हानि-

कारक विचार, कर्म या आहार से परहेज रखना। मन तो विविध प्रकार के व्यंजनो की ओर दौड़ रहा है और शरीर को भूखो मारा जा रहा है, तो ऐसा उपवास तो निरर्थक व्रत-उपवास से भी बुरा है।

ह० से० १०-४-३७

: १३ :

अप्राकृतिक व्यभिचार

कुछ साल पहले बिहार-सरकार ने अपने शिक्षा-विभाग मे पाठशालाओ मे होने वाले अप्राकृतिक व्यभिचार के सम्बन्ध मे जॉच करवाई थी। जॉच-समिति ने इस बुराई को शिक्षको तक मे पाया था, जो अपनी अस्वाभाविक वासना की तृप्ति के कारण विद्यार्थियो के प्रति अपने पद का दुरुपयोग करते है। शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर ने एक सरक्यूलर द्वारा शिक्षको मे पाई जाने वाली ऐसी बुराई का प्रतिकार करने का हुक्म निकाला था। सरक्यूलर का जो परिणाम हुआ होगा—अगर कोई हुआ हो—वह अवश्य ही जानने लायक होगा।

मेरे पास इस सम्बन्ध मे भिन्न-भिन्न प्रान्तो से साहित्य भी आया है, जिसमे इस ओर ऐसी बुराइयो की तरफ मेरा ध्यान खीचा गया है और कहा गया है कि यह प्राय भारत-भर के तमाम सार्वजनिक और प्रायवेट मदरसो मे फैल गया है और बराबर बढ रहा है।

यह बुराई यद्यपि अस्वाभाविक है तथापि इसकी विरासत हम अनन्त काल से भोगते आ रहे हैं। तमाम छुपी बुराइयो का इलाज ढूंढ निकालना एक कठिनतम काम है। यह और भी कठिन बन जाता है, जब इसका असर बालको के संरक्षक पर भी पड़ता है—और शिक्षक बालकों के सरक्षक हैं ही। प्रश्न होता है कि 'अगर प्राणदाता ही प्राणहारक हो जाय तो फिर प्राण कैसे बचे ?' मेरी राय मे जो बुराइयाँ प्रकट हो चुकती है, उनके सम्बन्ध मे विभाग की ओर से बाजाब्ता कार्रवाई करना ही इस बुराई के प्रतिकार के लिए काफी न होगा। सर्वसाधारण के मत को इस सम्बन्ध मे सुगठित और सुसस्कृत बनाना इसका एकमात्र उपाय है, लेकिन इस देश के कई मामलो मे प्रभावशाली लोकमत जैसी कोई बात है ही नहीं। राजनैतिक जीवन मे असहायता या बेबसी की जिस भावना का एकच्छत्र राज्य है उसने देश के जीवन के सब क्षेत्रो पर अपना असर डाल रक्खा है। अतएव जो बुराई हमारी ऑखो के सामने होती रहती है, उन्हे भी हम टाल जाते है।

जो शिक्षा-प्रणाली साहित्यिक योग्यता पर ही एकान्त जोर देती है, वह इस बुराई को रोकने के लिये अनुपयोगी ही नहीं है, बल्कि उससे उलटे बुराई को उत्तेजना ही मिलती है। जो बालक सार्वजनिक शालाओ मे दाखिल होने से पहले निर्दोष थे, शाला के पाठ्यक्रम के समाप्त होते-होते वे ही दूषित, स्त्रैण और नामर्द बनते देखे गये है। बिहार-समिति ने 'बालको के मन पर धार्मिक

प्रतिष्ठा के संस्कार जमाने' की सिफारिश की है, लेकिन बिल्ली के गले मे घंटी कौन बाँधे ? अकेले शिक्षक ही धर्म के प्रति आदर भावना पैदा कर सकते है, लेकिन वे स्वयं इससे शून्य है। अतएव प्रश्न शिक्षको के योग्य चुनाव का प्रतीत होता है, मगर शिक्षको के योग्य चुनाव का अर्थ होता है, या तो अब से कही अधिक वेतन या फिर शिक्षण के ध्येय का कायापलट—याने शिक्षा को पवित्र कर्त्तव्य मान कर शिक्षको का उसके प्रति जीवन अर्पण कर देना। रोमन-कैथोलिको मे यह प्रथा आज भी विद्यमान है। पहला उपाय तो हमारे जैसे गरीब देश के लिए स्पष्ट ही असम्भव है। मेरे विचार मे हमारे लिए दूसरा मार्ग ही सुगम है, लेकिन वह भी उस शासन-प्रणाली के आधीन रहकर सम्भव नही, जिसमे हरेक चीज की कीमत आँकी जाती है, और जो दुनिया-भर मे ज्यादा-से-ज्यादा होती है।

अपने बालको की नैतिक सुधारणा के प्रति माता-पिताओ की लापर्वाही के कारण इस बुराई को रोकना और भी कठिन हो जाता है। वे तो बच्चो को स्कूल भेजकर अपने कर्त्तव्य की इति-श्री मान लेते है। इस तरह हमारे सामने का काम बहुत ही विषाद-पूर्ण है, लेकिन यह सोचकर आशा भी होती है कि तमाम बुराइयों का एक रामबाण उपाय है, और वह है—आत्मशुद्धि। बुराई की प्रचण्डता से घबरा जाने के बदले हममे से हरेक को पूरे-पूरे प्रयत्न-पूर्वक अपने आस-पास के वातावरण का सूक्ष्म निरीक्षण करते रहना चाहिए और अपने आपको ऐसे निरीक्षण

का प्रथम और मुख्य केन्द्र वनाना चाहिए। हमे यह कहकर सन्तोप नही कर लेना चाहिए कि हममे दूसरो की-सी बुराई नही है। अस्वाभाविक दुराचार कोई स्वतन्त्र अस्तित्व की चीज नही है। वह तो एक ही रोग का भयकर लक्षण है। अगर हममे अपवित्रता भरी है, अगर हम विषय की दृष्टि से पतित है, तो पहले हमे आत्म-सुधार करना चाहिए और फिर पडौसियो के सुधार की आशा रखनी चाहिए। आजकल तो हम दूसरो के दोषो के निरीक्षण मे वहुत पटु हो गये है और अपने आपको अत्यन्त निर्दोप समझते है। परिणाम दुराचार का प्रसार होता है। जो इस वात के सत्य को महसूस करते है, वे इससे छूटे और उन्हे पता चलेगा, कि यद्यपि सुधार और उन्नति कभी आसान नही होते तथापि वे वहुत-कुछ सम्भवनीय है।

ह० से० २७-५-३७

: १४ :

वढ़ता हुआ दुराचार ?

सनातनधर्म कालेज, लाहौर के प्रिंसिपल लिखते है —

"इसके साथ मैं जो कटिग और विज्ञप्तियाँ वगैरह भेज रहा हूँ उन्हे देखने की मै आप से प्रार्थना करता हूँ। इन कागजो से ही आपको सारी वात का पता लग जायगा। यहाँ पजाव मे 'युवक हितकारी सघ' वहुत उपयोगी काम कर रहा है। विद्वत्-समाज एव अधिकारी-वर्ग का ध्यान इसकी ओर आकृष्ट हुआ

है, और बालको के सु-संस्कृत माता-पिताओ की भी दिलचस्पी सघ ने प्राप्त की है। बिहार के पडित सीतारामदास जी इस आन्दोलन के प्रणेता है, और इस आन्दोलन के आश्रयदाताओ मे यहाँ के अनेक प्रतिष्ठित सज्जनो के नाम गिनाये जा सकते है।

"इसमे तनिक भी सन्देह नही कि कोमल वय के बालको को फॅसाने का यह दुराचार भारत के दूसरे भागो की अपेक्षा इधर पंजाब और उत्तरी-पश्चिमी सीमाप्रान्त मे ज्यादा है।

"क्या आप कृपाकर 'हरिजन' मे अथवा किसी दूसरे अखबार मे लेख या पत्र लिखकर इस बुराई की तरफ देश का ध्यान आकर्षित करेगे ?"

इस अत्यन्त नाजुक प्रश्न के सम्बन्ध मे बहुत दिन हुए कि युवक सघ के मत्री ने मुझे लिखा था। उनका पत्र आने पर मैने डा० गोपीचन्द के साथ पत्र-व्यवहार शुरू किया, और उन से यह मालूम हुआ कि संघ के मत्री ने जो बाते अपने पत्र मे लिखी है वे सब सच्ची है, लेकिन मुझे यह स्पष्ट नही सूझ रहा था कि इस प्रश्न की क्या 'हरिजन' मे या किसी दूसरे पत्र मे चर्चा करूँ। इस दुराचार का मुझे पता था, मगर मुझे इस बात का पता नही था कि अखबारो मे इसकी चर्चा करने से कोई लाभ हो सकेगा या नही। यह विश्वास अब भी नही है। किन्तु कालेज के प्रिंसिपल साहब ने जो प्रार्थना की है उस की मै अवहेलना नही करना चाहता।

यह दुराचार नया नही है। यह बहुत दूर-दूर तक फैला हुआ

है, चूँकि उसे गुप्त रखा जाता है इसलिए वह आसानी से पकड़ में नहीं आसकता। जहाँ विलासपूर्ण जीवन होगा वहीं यह दुराचार होगा। प्रिंसिपल साहब के बताये हुए किस्से से तो यह प्रकट होता है कि अध्यापक ही अपने विद्यार्थियों को भ्रष्ट करने के दोषी है। बारी जब खुद ही खेत को चर जाय तो फिर किससे रखवारी की आशा करे ? बाइबिल में कहा है—"नोन जब खुद अलौना हो जाय तब उसे कौन चीज नमकीन बना सकती है।"

यह प्रश्न ऐसा है, कि इसे न तो कोई जाँच-कमेटी ही हल कर सकती है, न सरकार ही। यह तो एक नैतिक सुधार का काम है। माता-पिताओं के दिल में उनके उत्तरदायित्व का भाव पैदा करना चाहिए। विद्यार्थियों को शुद्ध स्वच्छ रहन-सहन के निकट संसर्ग में लाना चाहिए। सदाचार और निर्विकार जीवन ही सच्ची शिक्षा का आधार-स्तम्भ है, इस विचार का गम्भीरता के साथ प्रचार करना चाहिए। शिक्षण-संस्थाओं के ट्रस्टियों को अध्यापकों के चुनाव में बहुत ही खबरदारी रखनी चाहिए। और अध्यापकों को चुनने के बाद भी उन्हें यह ध्यान रखना चाहिए कि उनका आचरण ठीक है या नहीं ? ये तो मैंने थोड़े-से उपाय बतलाये हैं। इन उपायों के सहारे यह भयंकर दुराचार निर्मूल न हो तो कम-से-कम काबू में तो आ ही सकता है।

ह० से० ३-५-३५

: १५ :

नम्रता की आवश्यकता

बंगाल मे कार्यकर्त्ताओ से बातचीत करते हुए एक नवयुवक से मेरा साबका पड़ा जिसने कहा कि लोग मुझे इसलिए भी माने कि मै ब्रह्मचारी हूँ। उसने यह बात इस तरह कही और ऐसे यकीन के साथ कही कि मै देखता रह गया। मैने मन मे कहा कि यह उन विषयो की बाते करता है जिनका ज्ञान इसे बहुत थोडा है। उसके साथियो ने उसकी बात का खण्डन किया। और जब मैने उससे जिरह करना शुरू की तब तो खुद उसने भी कुबूल किया कि हाँ, मेरा दावा नही टिक सकता। जो शख्स शारीरिक पाप चाहे न करता हो, पर मानसिक पाप ही करता हो, वह ब्रह्मचारी नही। जो व्यक्ति परम रूपवती रमणी को देखकर अविचल नही रह सकता वह ब्रह्मचारी नही। जो केवल आवश्यकता के वशीभूत होकर अपने शरीर को अपने वश मे रखता है, वह करता तो अच्छी बात है, पर वह ब्रह्मचारी नही। हमे अनुचित अप्रासंगिक प्रयोग करके पवित्र शब्दो का मान घटाना न चाहिए। वास्तविक ब्रह्मचर्य का फल तो अद्‌भुत होता है और वह तो पहचाना भी जा सकता है। इस गुण का पालन करना कठिन है। प्रयत्न तो बहुतेरे लोग करते है, पर सफल बिरले ही हो पाते है। जो लोग गेरुए कपडे पहन कर सन्यासियो के वेश मे देश मे घूमते-फिरते है, वे अक्सर बाजार के मामूली आदमी से ज्यादा

ब्रह्मचारी नहीं होते। फर्क इतना ही है कि मामूली आदमी अक्सर उसकी डींग नहीं हाँकता और इसलिए बेहतर होता है। वह इस बात पर सन्तुष्ट रहता है कि परमात्मा मेरी आजमाइश को, मेरे प्रलोभनों को तथा मेरे विजयोत्सव और भगीरथ प्रयत्न के होते हुए भी, हो जाने वाले पतन को जानता है। यदि दुनिया उसके पतन को देखे और उससे उसे तोले तो भी वह सन्तुष्ट रहता है। अपनी सफलता को वह कजूस के धन की तरह छिपा कर रखता है। वह इतना विनयी होता है कि उसे प्रगट नहीं करता। ऐसा मनुष्य उद्धार की आशा रख सकता है, परन्तु वह आधा सन्यासी जो कि सयम का ककहरा भी नहीं जानता, यह आशा नहीं रख सकता। वे सार्वजनिक कार्यकर्त्ता जो कि सन्यासी का वेष नहीं बनाते, पर जो अपने त्याग और ब्रह्मचर्य का ढिढोरा पीटते-फिरते हैं और दोनो को सस्ता बनाते है तथा अपने को और अपने सेवा-कार्य को बदनाम करते हैं, उनसे खतरा समझिए।

जबकि मैंने अपने साबरमती वाले आश्रम के लिए नियम बनाये तो उन्हे मित्रो के पास सलाह और समालोचना के लिए भेजा। एक प्रति स्वर्गीय सर गुरुदास बनर्जी को भी भेजी थी। उस प्रति की पहुच लिखते हुए उन्होंने सलाह दी कि नियमो मे उल्लिखित व्रतो मे नम्रता का भी एक व्रत होना चाहिए। अपने पत्र मे उन्होंने कहा था कि आजकल के नवयुवको मे नम्रता का अभाव पाया जाता है। मैंने उनसे कहा कि मै आपकी सलाह के

मूल्य को तो मानता हूँ और नम्रता की आवश्यकताको भी सोलहो-आना मानता हूँ, पर एक व्रत मे उसको स्थान देना उसके गौरव को कम कर देना है। यह बात तो हमे गृहीत ही करके चलना चाहिए कि जो लोग अहिसा, ब्रह्मचर्य का पालन करेगे वे अवश्य ही नम्र रहेगे। नम्रता-हीन सत्य एक उद्धत हास्य-चित्र होगा। जो सत्य का पालन करना चाहता है वह जानता है कि वह कितनी कठिन बात है। दुनिया उसकी विजय पर तो तालियाँ बजायेगी, पर वह उसके पतन का हाल बहुत कम जानती है। सत्य-परायण मनुष्य बड़ा आत्म-ताड़न करने वाला होता है। उसे नम्र बनने की आवश्यकता है। जो शख्स सारे ससार के साथ, यहाँ तक कि उसके भी साथ जो उसे अपना शत्रु कहता हो, प्रेम करना चाहता है वह जानता है कि केवल अपने बल पर ऐसा करना किस तरह असम्भव है। जब तक वह अपने को एक क्षुद्र रजकण न समझने लगेगा तब तक वह अहिसा के तत्व को नही ग्रहण कर सकता। जिस प्रकार उसके प्रेम की मात्रा बढ़ती जाती है उसी प्रकार यदि उसकी नम्रता की मात्रा न बढी तो वह किसी काम का नही। जो मनुष्य अपनी आँखो मे तेज लाना चाहता है, जो स्त्री-मात्र को अपनी सगी माता या बहन मानता है उसे तो रजकण से भी क्षुद्र होना पड़ेगा। उसे एक खाई के किनारे खड़ा समझिए। जरा ही मुंह इधर-उधर हुआ कि गिरा। वह अपने मन से भी अपने गुणो की कानाफूसी करने का साहस नही कर सकता, क्योकि वह नही जानता कि इसी अगले क्षण

मे क्या होने वाला है ? उसके लिए 'अभिमान विनाश के पहले जाता है और मगरूरी पतन के पहले।' गीता मे सच कहा है—

विपया विनिवर्त्तन्ते निराहारस्य देहिन ।
रसवर्ज्यं रसोप्यस्य पर दृष्ट्वा निवर्तते ॥

और जवतक मनुष्य के मन मे अहंभाव मौजूद है तव तक उसे ईश्वर के दर्शन नही हो सकते। यदि वह ईश्वर मे मिलना चाहता हो तो उसे शून्यवत् हो जाना चाहिए। इस सघर्प-पूर्ण जगत् मे कौन कहने का साहस कर सकता है--"मैने विजय प्राप्त की।" हम नही, ईश्वर हमे विजय प्राप्त कराता है।

हमे इन गुणो का मूल्य ऐसा कम न कर देना चाहिए कि जिससे हम सव उनका दावा कर सके। जो वात भौतिक विपय मे सत्य है वही आध्यात्मिक विपय मे भी सत्य है। यदि एक साँसारिक सग्राम मे विजय पाने के लिए योरोप ने पिछले युद्ध मे, जो कि स्वयं ही एक नाशवान् वस्तु है, कितने ही करोड लोगो का वलिदान कर दिया, तव यदि आध्यात्मिक युद्ध मे करोडो लोगो को इसके प्रयत्न मे मिट जाना पडे, जिससे कि ससार के सामने एक पूर्ण उदाहरण रह जाय तो क्या आश्चर्य है ? यह हमारे अधीन है कि हम असीम नम्रता के साथ इस वात का उद्योग करे।

इन उच्च गुणो की प्राप्ति ही उनके लिए किये परिश्रम का पुरस्कार है। जो उस पर व्यापार चलाता है वह अपनी आत्मा का नाश करता है। सद्गुण कोई व्यापार करने की चीज नही है। मेरा सत्य, मेरी अहिसा, मेरा ब्रह्मचर्य, ये मेरे और मेरे कर्त्ता से

सम्बन्ध रखने वाले विषय है। वे बिक्री की चीजे नहीं है। जो युवक उनकी तिजारत करने का साहस करेगा वह अपना ही नाश कर बैठेगा। संसार के पास कोई बांट ऐसा नहीं है, कोई साधन नही है, जिससे कि इन बातो की तौल की जा सके। छान-बीन और विश्लेषण की वहाँ गुजर नहीं। इसलिए हम कार्य-कर्त्ताओ को चाहिए कि हम उन्हे केवल अपने शुद्धिकरण के लिए प्राप्त करे। हम दुनिया से कह दे कि वह हमारे कार्यो से हमारी पहचान करे। जो संस्था या आश्रम लोगो से सहायता पाने का दावा करता हो, उसका लक्ष्य भौतिक-सॉसारिक होना चाहिए जैसे--कोई अस्पताल, कोई पाठशाला, कोई कताई और खादी विभाग। सर्वसाधारण को इन कामो की योग्यता परखने का अधिकार है और यदि वे उन्हे पसद करे तो उनकी सहायता करे। शर्त्तें स्पष्ट है। व्यवस्थापको मे नेक-नीयती और योग्यता होनी चाहिए। वह प्रामाणिक मनुष्य जो शिक्षा-शास्त्र से अपरिचित हो, शिक्षक के रूप मे लोगो से सहायता पाने का दावा नहीं कर सकता। सार्वजनिक संस्थाओ का हिसाब-किताब ठीक-ठीक रक्खा जाना चाहिए, जिससे कि लोग जब चाहे तब देख-भाल सके। इन शर्त्तो की पूर्त्ति संचालको को करनी चाहिए। उनकी सच्चरित्रता लोगो के आदर और आश्रय के लिए भार-रूप न होनी चाहिए।

हि० न० २५-६-२५

: १६ :

सुधारकों का कर्तव्य

लाहौर के सनातनधर्म कालेज के प्रिंसिपल का निम्नलिखित पत्र मै सहर्ष यहाँ प्रकाशित कर रहा हूँ —

"बालको पर जो अप्राकृतिक अत्याचार हो रहे है उनकी ओर मै अधिक-से-अधिक जोर देकर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ।

आपको यह तो मालूम ही होगा कि इनमे से बहुत ही थोडे मामलो की पुलिस मे रपट लिखाई जाती है, या उन्हे अदालत मे ले जाते है। इधर कुछ दिनो से पजाब मे ऐसे केस इतने ज्यादा होने लगे है कि जिनकी कोई हद नही। इस पत्र के साथ आपके अवलोकनार्थ अखबारो की कुछ कतरने भेज रहा हूँ। अदालत मे कभी-कभी जो एकाध मामले आते है, उनमे से अत्यन्त बीभत्स किस्से ही अखबारो मे प्रकाशित होते है। इन्हे पढ़कर आपको यह पूरी तरह से मालूम हो जायगा कि हमारे कोमल वयस्क बालक-बालिकाओ पर इस भयका किस क़दर आतंक छाया हुआ है। कुछ महीने पहले लाहौर मे गुडो ने दिन-दहाडे कुछ स्कूलो के फाटको पर से छोटे-छोटे बच्चो को उठा ले जाने के साहसिक प्रयत्न किये थे। आज भी बालको के स्कूल मे जाते और आते वक्त खास इन्तजाम रखना पडता है। अदालत मे जो मामले गये है उनकी रिपोर्टो मे बालको के ऊपर किये गए जिन आक्रमणो

का वर्णन आया है वे अत्यन्त क्रूरता और साहसपूर्ण है। ऐसे राक्षसी काम तो विरले ही मनुष्य कर सकते है।

साधारण जनता या तो इस विषय मे उदासीन हैं, या वह इस तरह की लाचारी महसूस करती है कि इन अपराधो को संगठित होकर कुचल देने की लोगो मे आत्म-श्रद्धा नही।

पंजाब-सरकार के जारी किये हुए सरक्यूलर की जो नकल इसके साथ मै भेज रहा हूँ, उससे आपको यह पता चल जायगा कि जनता और सरकारी अफसरो की उदासीनता के कारण सरकार भी इस विषय मे अपने-को लाचार-सा अनुभव करती है।

आपने 'यगइंडिया' के ९ सितम्बर १९२६ के तथा २७ जून १९२९ के अङ्क मे यह ठीक ही कहा था कि इस प्रकार के अप्राकृतिक व्यभिचार के अपराधो के सम्बन्ध मे सार्वजनिक चर्चा करने का समय आ गया है। और इस विषय मे सारे देश मे लोक-मत जागृत करने के लिए अखबारो द्वारा इन जुर्मो का प्रकाशन ही एकमात्र प्रभावोत्पादक उपाय है।

मै आपको अत्यन्त आदर के साथ यह बतलाना चाहता हूँ कि आज की मौजूदा स्थिति मे कम-से-कम इतना तो हमे करना ही चाहिए। मेरी आपसे यह प्रार्थना है कि इस दुराचार के विरुद्ध अखबारो द्वारा जोरदार आन्दोलन चलाने के लिए आप अपनी प्रभावशाली आवाज उठाकर दूसरे अखबारो को रास्ता दिखाइए।"

इस बुराई के खिलाफ हमें अविश्रान्त लड़ाई लड़नी चाहिए, इस विषय में तो शंका हो ही नहीं सकती। इस पत्र के साथ जो अत्यन्त घृणोत्पादक रिपोर्टें भेजी गई थीं, उन्हें मैंने पढ़ डाला है। सनातनधर्म कालेज के आचार्य ने मेरे जिन लेखों का उल्लेख किया है, उनमें जिस किस्म के मामलों की मैंने चर्चा की थी, उससे ये मामले जुदे ही प्रकार के हैं। वे मामले अध्यापकों की अनीति के थे, जिनमें उन्होंने बालकों को फुसलाया था। और इन रिपोर्टों में अधिकतर जिन मामलों का वर्णन आया है, उनमें तो गुण्डों ने कोमल वय के बालकों पर अप्राकृतिक व्यभिचार करके उनका खून किया है। अप्राकृतिक व्यभिचार और उसके बाद खून किये जाने के केस हालाँकि और भी अधिक घृणा पैदा करने वाले मालूम होते हैं, तो भी मेरा यह विश्वास है कि जिन मामलों में बालक जान-बूझ कर अपने अध्यापकों की विषय-वासना के शिकार होते हैं उनकी अपेक्षा इस प्रकार के मामलों का इलाज करना सहज है। दोनों के ही विषय में सुधारकों के सतत-जागृत रहने और इस बीभत्स कार्य के सम्बन्ध में लोगों की अन्तरात्मा जगाने की आवश्यकता है। पंजाब में चूंकि इस किस्म के अपराध बहुत अधिक होने लगे हैं, इसलिए वहाँ के नेताओं का यह कर्तव्य है कि वे जाति और धर्मका भेद एक तरफ रखकर एक जगह इकट्ठे हों, और बालकों को फुसलाकर फंसाने वाले या उन्हें उठा ले जाकर उनके साथ अप्राकृतिक बलात्कार करके उनका खून करने वाले अपराधियों

के पंजे से इस पंचनद प्रदेश के कोमल वयस्क युवकों को बचाने के उपाय का आयोजन करें। अपराधियों की निन्दा करने वाले प्रस्ताव पास करने से कुछ भी होने-हवाने का नहीं। पाप-मात्र भिन्न-भिन्न प्रकार के रोग हैं और सुधारकों को उन्हें ऐसा रोग समझकर ही उनका इलाज करना चाहिए।

इसका अर्थ यह नहीं कि पुलिस इन मामलों को सार्वजनिक अपराध समझने का अपना काम मुल्तवी रक्खेगी, किन्तु पुलिस जो कार्रवाई करती है, उसकी मंशा इन सामाजिक अव्यवस्थाओं के मूल कारण ढूंढ़ कर उन्हें दूर करने की होती ही नहीं। यह तो सुधारकों का खास अधिकार है। और अगर समाज के सदाचार के विषय की भावना और आग्रह न बढ़ा, तो अख़बारों में दुनिया-भर के लेख लिखे जायँ तो भी ऐसे अपराध और-और बढ़ते ही जायँगे। इसका कारण यही है कि इस उलटे रास्ते पर जाने वाले लोगों की नैतिक भावना कुंठित हो जाती है और वे अखबारों को—खासकर उन भागों की जिनमें ऐसे-ऐसे दुराचारों के विरुद्ध जोश से भरी हुई नसीहतें रहती हैं—शायद ही कभी पढ़ते हों। इसलिए मुझे तो यह एक ही प्रभावकारक-मार्ग सूझ रहा है कि सनातनधर्म कालेज के प्रिन्सिपल (यदि वे उनमें से एक हों तो)--जैसे कुछ उत्साही सुधारक दूसरे सुधारकों को एकत्रित करें और इस बुराई को दूर करने के लिए कुछ सामूहिक उपाय हाथ में लें।

ह० से० २–११--३५

: १७ :

नवयुवकों से !

आजकल कहीं-कहीं नवयुवकों की यह आदत-सी पड़ गयी है कि बड़े-बूढ़े जो-कुछ कहें वह नहीं मानना चाहिए। मैं यह तो नहीं कहना चाहता कि उनके ऐसा मानने का बिल्कुल कोई कारण ही नहीं है लेकिन देश के युवकों को इस बात से आगाह जरूर करना चाहता हूँ कि बड़े-बूढ़े स्त्री-पुरुषों द्वारा कही हुई हरेक बात को वे सिर्फ इसी कारण मानने से इन्कार न करें कि उसे बड़े-बूढ़ों ने कहा है। अक्सर बुद्धि की बात बच्चों तक के मुँह से जैसे निकल जाती है उसी तरह बहुधा बड़े-बूढ़ों के मुँह से वह निकल जाती है। स्वर्ण-नियम तो यही है कि हरेक बात को बुद्धि और अनुभव की कसौटी पर कसा जाय, फिर वह चाहे किसी की कही या बताई हुई क्यों न हो। कृत्रिम साधनों से सन्तति-निग्रह की बात पर मैं अब आता हूँ। हमारे अन्दर यह बात जमा दी गई है कि अपनी विषय-वासना की पूर्त्ति करना भी हमारा वैसा ही कर्त्तव्य है जैसे वैध रूप में लिए हुए कर्ज को चुकाना हमारा कर्त्तव्य है और अगर हम ऐसा न करें तो उससे हमारी बुद्धि कुण्ठित हो जायगी। इस विषयेच्छा को सन्तानोत्पत्ति की इच्छा से पृथक् माना जाता है और सन्तति-निग्रह के लिए कृत्रिम-साधनों के समर्थकों का कहना है कि जबतक सहवास करने वाले स्त्री-पुरुष को बच्चे पैदा करने की इच्छा न हो तबतक गर्भधारण नहीं होने देना

चाहिए। मैं वडे साहस के साथ यह कहता हूँ कि यह ऐसा सिद्धान्त है, जिसका कही भी प्रचार करना वहुत खतरनाक है, और हिन्दुस्तान-जैसे देश के लिए तो, जहाँ मध्य-श्रेणी के पुरुप अपनी जननेन्द्रिय का दुरुपयोग करके अपना पुरुपत्व ही खो वैठे है, यह और भी वुरा है। अगर विपयेच्छा की पूर्त्ति कर्त्तव्य हो, तव तो जिस अप्राकृतिक व्यभिचार के वारे मे कुछ समय पहले मैने लिखा था वह तथा काम-पूर्त्ति के कुछ अन्य उपायो को भी ग्रहण करना होगा। पाठको को याद रखना चाहिए कि वडे-वडे आदमी भी ऐसे काम पसन्द करते मालूम पड़ रहे है जिन्हे आम तौर पर वैपयिक पतन माना जाता है। सम्भव है कि इस वात से पाठको को कुछ ठेस लगे, लेकिन अगर किसी तरह इसपर प्रतिष्ठा की छाप लग जाय तो वालक-वालिकाओ मे अप्राकृतिक-व्यभिचार का रोग वुरी तरह फैल जायगा। मेरे लिए तो कृत्रिम साधनो के उपयोग से कोई खास फर्क नही है, जिन्हे लोगो ने अभी तक अपनी विपयेच्छा पूर्त्ति के लिए अपनाया है, और जिनके ऐसे कुपरिणाम आये है कि वहुत-कम लोग उनसे परिचित है। स्कूली लडके-लड़कियो मे गुप्त व्यभिचार ने क्या तूफान मचाया है, यह मै जानता हूँ। विज्ञान के नाम पर सन्तति-निग्रह के कृत्रिम साधनो के प्रवेश और प्रख्यात सामाजिक नेताओ के नाम से उनके छपने से स्थिति आज और भी पेचीदा होगई है और सामाजिक जीवन की शुद्धता के लिए सुधारको का काम वहुत-कुछ असम्भव-सा हो गया है। पाठको को यह वताकर मै

अपने पर किये गए किसी विश्वास को भंग नहीं कर रहा हूँ कि स्कूल-कालिजों में ऐसी अविवाहित जवान लड़कियाँ भी हैं जो अपनी पढ़ाई के साथ-साथ कृत्रिम सन्तति-निग्रह के साहित्य व मासिक पत्रों को भी बड़े चाव से पढ़ती रहती हैं और कृत्रिम साधनों को अपने साथ रखती हैं। इन साधनों को विवाहिता स्त्रियों तक ही सीमित रखना असम्भव है। और विवाह की पवित्रता तो तभी लोप हो जाती है, जबकि उसके स्वाभाविक परिणाम सन्तानोत्पत्ति को छोड़कर महज अपनी पाशविक विषय-वासना की पूर्त्ति ही उसका सबसे बड़ा उपयोग मान लिया जाता है।

मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि जो विद्वान स्त्री-पुरुष सन्तति-निग्रह के कृत्रिम साधनों के पक्ष में बड़ी लगन के साथ प्रचार-कार्य कर रहे हैं, वे इस झूठे विश्वास के साथ कि इससे उन बेचारी स्त्रियों की रक्षा होती है, जिन्हें अपनी इच्छा के विरुद्ध बच्चों का भार सम्हालना पड़ता है, देश के युवकों की ऐसी हानि कर रहे हैं, जिसकी कभी पूर्त्ति ही नहीं हो सकती। जिन्हें अपने बच्चों की संख्या सीमित करने की जरूरत है, उन तक तो आसानी से वे पहुँच भी नहीं सकेंगे, क्योंकि हमारे यहाँ की गरीब स्त्रियों को पश्चिमी स्त्रियों की भाँति ज्ञान या शिक्षण कहाँ प्राप्त है? यह भी निश्चय है कि मध्य-श्रेणी की स्त्रियों की ओर से भी यह प्रचार-कार्य नहीं हो रहा है, क्योंकि इस ज्ञान की उन्हें उतनी जरूरत ही नहीं है, जितनी कि गरीब लोगों को है।

इस प्रचार-कार्य से सबसे बडी जो हानि हो रही है, वह तो पुराने आदर्श को छोडकर उसकी जगह एक ऐसे आदर्श को अपनाना है, जो अगर अमल मे लाया गया तो जाति का नैतिक तथा शारीरिक सर्वनाश निश्चित है। प्राचीन शास्त्रो ने व्यर्थ वीर्य-नाश को जो भयावह बताया है, वह कुछ अज्ञान-जनित अन्ध-विश्वास नही है। कोई किसान अपने पास के सबसे बढिया बीज को बजर जमीन मे बोवे, या बढ़िया खाद से खूब उपजाऊ बने हुए किसी खेत के मालिक को इस शर्त पर बढिया बीज मिले कि उसके लिए उसकी उपज करना ही सम्भव न हो तो उसे हम क्या कहेगे? परमेश्वर ने कृपा करके पुरुष को तो बहुत बढिया बीज दिया है और स्त्री को ऐसा बढ़िया खेत दिया है कि जिससे बढिया इस भू-मण्डल मे कोई मिल ही नही सकता। ऐसी हालत मे मनुष्य अपनी इस बहुमूल्य सम्पत्ति को व्यर्थ जाने दे तो यह उसकी दण्डनीय मूर्खता है। उसे तो चाहिए कि अपने पास के बढिया-से-बढ़िया हीरे-जवाहरात अथवा अन्य मूल्यवान वस्तुओ की वह जितनी देख-भाल रखता हो, उससे भी ज्यादा इसकी सार-सम्हाल करे। इसी प्रकार वह स्त्री भी अक्षम्य मूर्खता की ही दोषी है, जो अपने जीवन-उत्पादक क्षेत्र मे जान-बूझ कर व्यर्थ जाने देने के विचार से बीज को ग्रहण करे। दोनो ही उन्हे मिले हुए गुणो का दुरुपयोग करने के दोषी होगे और उनसे उनके ये गुण छिन जायँगे। विषयेच्छा एक सुन्दर और श्रेष्ठ वस्तु है, इसमे शर्म की कोई बात नही है, किन्तु यह है सन्तानोत्पत्ति के

लिए। इसके सिवा इसका कोई उपयोग किया जाय तो वह परमेश्वर और मानवता के प्रति पाप होगा। सन्तति-निग्रह के कृत्रिम उपाय किसी-न-किसी रूप मे पहले भी थे और बाद मे भी रहेगे, परन्तु पहले उनका उपयोग पाप माना जाता था। व्यभिचार को सद्गुण कहकर उसकी प्रशंसा करने का काम हमारे ही युग के लिए सुरक्षित रक्खा हुआ था। कृत्रिम साधनो के हिमायती हिन्दुस्तान के नौजवानो की जो सबसे बडी हानि कर रहे है, वह उनके दिमाग मे ऐसी विचार-धारा भर देना है, जो मेरे खयाल मे, गलत है। भारत के नौजवान स्त्री-पुरुषो का भविष्य उनके अपने ही हाथो मे है। उन्हे चाहिए कि इस झूठे प्रचार से सावधान होजायँ और जो बहुमूल्य वस्तु परमेश्वर ने उन्हे दी है, उसकी रक्षा करे, और जब वे उसका उपयोग करना चाहे तो सिर्फ उसी उद्देश्य से करे कि जिसके लिए वह उन्हे दिया गया है।

ह० से० २८-३-३६।

: १८ :

भ्रष्टता की ओर

एक युवक ने लिखा है —

"ससार का काया-कल्प करने के लिए आप चाहते है कि प्रत्येक मनुष्य सदाचारी हो जाय, पर मेरी समझ मे ठीक-ठीक नही आ रहा है। आखिर इस सचरित्रता से आपका क्या अभि-

प्राय है ? यह केवल स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध तक ही सीमित है या आपका मतलब मनुष्य के समस्त व्यवहार से है ? मुझे तो शक है कि आपका मतलब केवल स्त्री-पुरुषो के सम्बन्ध तक ही सीमित है, क्योकि आप अपने पूँजीपति और जमींदार दोस्तो को तो कभी यह बताने का कष्ट नही करते कि वे कैसे अन्यायपूर्वक मजदूरो और किसानो का पेट काट-काट कर अपनी जेबे भरते रहते है। तहाँ बेचारे युवक और युवतियो की चारित्रिक गलतियो पर उनकी निन्दा और ताड़ना करते हुए आप कभी थकते ही नही, और सदा उनके सामने ब्रह्मचर्य-व्रत का आदर्श उपस्थित करते रहते है। आपका यह दावा है कि आप भारतीय युवको के हृदय को जानते है। मै किसी का प्रतिनिधि होने का दावा नही करता, पर एक युवक की हैसियत से ही मै कहता हूँ कि आपका यह दावा गलत है। मालूम होता है, आपको पता ही नही है कि आजकल के मध्यम्-वर्ग के युवक को किन परिस्थितियो मे से गुजरना पड़ता है। बेकारी की यह भयंकर चिता, आदमी को पीस डालनेवाली ये सामाजिक रूढ़ियाँ और परम्पराएँ, और सहशिक्षा का यह प्रलोभनकारी विघातक वातावरण, इनके बीच वह बेचारा आन्दोलित होता रहता है। नवीनता और प्राचीनता का यह संघर्ष उसकी सारी शक्तियो को चूर-चूर कर रहा है और वह हारकर लाचार होरहा है। मै आपसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ कि इन बेचारो को थोड़ी रहम की नजर से देखिए, दया कीजिए। उन्हे कृपया अपने संन्यासाश्रम के नीति-शास्त्र

की कसौटी पर न कसिये। मेरा तो खयाल है कि अगर दोनों की मर्ज़ी हो और परस्पर प्रेम हो तो स्त्री-पुरुष चाहे वे पति-पत्नी न भी हों तो भी आखिर जो-चाहे कर सकते हैं। मेरी राय में तो वह सदाचार ही होगा। और जब से संतति-नियमन के कृत्रिम साधनों का आविष्कार हुआ है, सयोग-व्यवस्था की दृष्टि से विवाह-प्रथा का नैतिक आधार तो छिन्न-भिन्न होगया है। अब तो केवल बच्चों के पालन-पोषण और रक्षा-भर के लिये उसका उपयोग रह गया है। ये बातें सुनकर शायद आपके दिल को चोट पहुँचेगी, पर मैं आप से यह प्रार्थना करता हूँ कि आजकल के युवकों को भला-बुरा कहने से पहले कृपया अपनी तरुणाई को न भूलियेगा। आप खुद क्या कम कामी थे? कितना विषय-भोग करते थे? मैथुन के प्रति आपकी यह घृणा शायद आपकी इस अति का ही परिणाम है। इसलिये अब आप ऐसे सन्यासी बन रहे हैं और इसमें आपको पाप-ही-पाप नजर आता है। अगर तुलना ही करने लगें तो मेरा तो खयाल है कि आजकल के कई युवक इस विषय में जरूर आप से बेहतर साबित होंगे।"

इस तरह के अनेक पत्र मेरे पास आते हैं। इस युवक से मेरा परिचय हुए लगभग तीन महीने हुए होंगे, पर इतने थोड़े समय में ही, जहाँ तक मुझे पता है, इसके अन्दर कई परिवर्तन हो चुके हैं। अब भी वह एक गभीर परिस्थिति में ही गुजर रहा है। ऊपर का उद्धरण तो उसके एक लम्बे पत्र का अंश है। उसके और भी पत्र मेरे पास हैं, जिन्हें अगर मैं चाहूँ तो प्रकाशित कर सकता

संयोग-समस्या पर विचार करते समय अपने व्यक्तिगत अनुभव कहना भी अनुचित न होगा। जिन पाठको ने मेरी 'आत्म-कथा' नही पढ़ी है, वे मेरी विपय-लोलुपता के विषय मे कही इस पत्र-प्रेषक की तरह अपने विचार न बनाले। सबसे पहली वात तो यह है कि मै चाहे कितना ही विपयी रहा होऊँ, मेरी विपय-वृत्ति अपनी पत्नी तक ही सीमित थी। फिर मै एक बहुत बड़े सम्मिलित परिवार मे रहता था, जिससे रात के कुछ घंटो को छोड़कर हमे एकान्त कभी मिलता ही नही था। दूसरे, तेईस वर्ष की अवस्था मे ही मै इतना समझने लायक जागृत हो गया था कि महज भोग के लिए संयोग करना निरी बेवकूफी है। और सन् १८९९ मे, यानी जब मै तीस साल का था, पूर्ण ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा लेने का मै निश्चय कर चुका था। मुझे सन्यासी कहना गलत होगा। मेरे जीवन के नियामक आदर्श तो सारी मानवता के ग्रहण करने योग्य है। मैंने उन्हे धीरे-धीरे, ज्यो-ज्यो मेरा जीवन-विकास होता गया, प्राप्त किया है। हरेक कदम मैंने पूरी तरह सोच-समझ कर गहरे मनन के बाद रखा है। ब्रह्मचर्य और अहिसा दोनो मेरे व्यक्तिगत अनुभव से मुझे प्राप्त हुए है, और अपने सार्वजनिक कर्त्तव्यो को पूरा करने के लिए उनका पालन नितान्त आवश्यक था। दक्षिण अफ्रिका मे एक गृहस्थ, एक बैरिस्टर, एक समाजसुधारक, अथवा एक राजनीतिज्ञ की हैसियत से मुझे जन-समाज से पृथक जीवन व्यतीत करना पड़ा है। उस जवीन मे अपने उपर्युक्त कर्त्तव्यो के पालनार्थ

मेरे लिए यह जरूरी हो गया कि मै कठोर सयम का पालन करूँ तथा अपने देश-भाइयो और यूरोप-निवासियो के साथ एक मनुष्य की हैसियत से व्यवहार करते हुए सत्य और अहिसा का उतनी ही कड़ाई से पालन करूँ।

मै एक मामूली आदमी हूँ। मुझ मे उससे जरा भी विवेकता नहीं, और योग्यता तो मामूली से कम है। मेरे इस अहिसा और ब्रह्मचर्य के व्रत के पालन मे भी कोई बधाई देने लायक बात नहीं, क्योकि ये तो वर्षों के निरन्तर प्रयास से मेरे लिए साध्य हुआ है। मुझे तो इसमे जरा भी सन्देह नहीं कि मैने जो साध्य किया है उसे तो हर पुरुष और स्त्री साध्य कर सकते हैं, बशर्ते कि वे भी उसी प्रयास, आशा और श्रद्धा से चले। श्रद्धा-हीन कार्य अतल खाई की थाह लेने का प्रयत्न करने की तरह है।

ह० से० ३-१०-३६

: १९ :

एक युवक की कठिनाई

नवयुवको के लिए मैने 'हरिजन' मे जो लेख लिखा था, उस पर एक नवयुवक, जिसने अपना नाम गुप्त ही रखा है, अपने मन मे उठे एक प्रश्न का उत्तर चाहता है। यो गुम नाम पत्रो पर कोई ध्यान न देना ही सबसे अच्छा नियम है, लेकिन जब

कोई सार-युक्त वात पूछी जाय, जैसी कि इसमे पूछी गई है, तो कभी-कभी मै इस नियम को तोड़ भी देता हूॅ।

पत्र हिन्दी मे है और कुछ लम्बा है। साराश उसका यह है.—

"आपके लेखो को पढकर मुझे सन्देह होता है कि आप युवको के स्वभाव को कहाॅ तक समझते है। जो वात आपके लिए सम्भव हो गई है वह सब युवको के लिए सम्भव नही है। मेरा विवाह हो चुका है। इतने पर भी मै स्वयं तो संयम कर सकता हूॅ, लेकिन मेरी पत्नी ऐसा नही कर सकती। बच्चे पैदा हो, यह तो वह नही चाहती, लेकिन विपयोपभोग करना चाहती है। ऐसी हालत मे, मै क्या करू? क्या यह मेरा फर्ज नही है कि मै उसकी भोगेच्छा को तृप्त करूं? दूसरे जरिये से वह अपनी इच्छा पूरी करे, इतनी उदारता तो मुझ मे नही है। फिर अखबारो मे मै जो पढता रहता हूॅ,उससे मालूम पड़ता है कि विवाह-सम्बन्ध कराने और नव-दम्पतियो को आर्शीवाद देने मे भी आपको कोई आपत्ति नही है। यह तो आप अवश्य जानते होगे, या आपको जानना चाहिए कि वे सव उस ऊंचे उद्देश्य से ही नही होते जिसका कि आपने उल्लेख किया है।"

पत्र-लेखक का कहना ठीक है। विवाह के लिए उम्र, आर्थिक-स्थिति आदि की एक कसौटी मैने बना रक्खी है। उसको पूरा करके जो विवाह होते है, मै उनकी मंगल-कामना करता हूॅ। इतने विवाहो मे मै शुभ-कामना करता हूॅ, इससे सम्भवतः

यही प्रकट होता है कि देश के युवको को इस हद तक मै जानता हूँ कि यदि वे मेरा पथ-प्रदर्शन चाहे तो मै वैसा कर सकता हूँ।

इस भाई का मामला माना इस तरह का एक नमूना है जिसके कारण यह सहानुभूति का पात्र है, लेकिन सयोग का एक-मात्र उद्देश्य प्रजनन ही है, यह मेरे लिए एक प्रकार से नई खोज है। इस नियम को जानता तो मै पहले से था, लेकिन जितना चाहिए उतना महत्व इसे मैंने पहले कभी नहीं दिया था। अभी तक मै इसे खाली पवित्र इच्छा-मात्र समझता था, लेकिन अब तो मै इसे विवाहित जीवन का ऐसा मौलिक विधान मानता हूँ कि यदि इसके महत्व को पूरी तरह मान लिया गया तो इसका पालन कठिन नहीं है। जब समाज मे इस नियम को उपयुक्त स्थान मिल जायगा तभी मेरा उद्देश्य सिद्ध होगा, क्योकि मेरे लिए तो यह एक जाज्वल्यमान विधान है। जब हम इसको भग करते है तो उसके दण्डस्वरूप बहुत-कुछ भुगतना पडता है। पत्र-प्रेषक युवक यदि इसके उस महत्व को समझ जाय जिसका कि अनुमान नहीं लगाया जा सकता, और यदि उसे अपने मे विश्वास एव अपनी पत्नी के लिए प्रेम हो, तो वह अपनी पत्नी को भी अपने विचारो का बना लेगा। उसका यह कहना कि मै स्वयं सयम कर सकता हूँ, क्या सच है ? क्या उसने अपनी पाशविक वासना को जन-सेवा-जैसी किसी ऊची भावना मे परिणत कर लिया है ? क्या स्वभावत वह ऐसी कोई बात नहीं करता, जिससे उसकी पत्नी की विषय-भावना को प्रोत्साहन

मिले ? उसे जानना चाहिए कि हिन्दू-शास्त्रानुसार आठ तरह के सहवास माने गये हैं, जिनमें संकेतों द्वारा विषय-प्रवृति को प्रेरित करना भी शामिल है। क्या वह इससे मुक्त है ? यदि वह ऐसा हो और सच्चे दिल से यह चाहता हो कि उसकी पत्नी मे भी विषय-वासना न रहे, तो वह उसे शुद्धतम प्रेम से सराबोर करे, उसे यह नियम समझावे, सन्तानोत्पत्ति की इच्छा के बग़ैर सहवास करने से जो शारीरिक हानि होती है वह उसे समझावे और वीर्य-रक्षा का महत्त्व बतलावे। अलावा इसके उसे चाहिए कि अपनी पत्नी को अच्छे कामो की ओर प्रवृत्त करके उनमे उसे लगाये रक्खे और उसकी विषय-वृत्ति को शान्त करने के लिये उसके भोजन, व्यायाम आदि को नियमित करने का यत्न करे। और इस सबसे बढ़कर यदि वह धर्म-प्रवृत्ति का व्यक्ति है, तो अपने उस जीवित विश्वास को वह अपनी सहचरी पत्नी में भी पैदा करने की कोशिश करे, क्योंकि मुझे यह बात कहनी ही होगी कि ब्रह्मचर्य व्रत का तब तक पालन नहीं हो सकता जब तक कि ईश्वर मे, जो कि जीता-जागता सत्य है, अटूट विश्वास न हो। आजकल तो यह एक फैशन-सा बन गया है कि जीवन मे ईश्वर का कोई स्थान नहीं समझा जाता और सच्चे ईश्वर मे अडिग आस्था रखने की आवश्यकता के बिना ही सर्वोच्च जीवन तक पहुँचने पर जोर दिया जाता है। मैं अपनी यह असमर्थता कबूल करता हूँ कि जो अपने से ऊंची किसी दैवी-शक्ति मे विश्वास नहीं रखते, या उसकी जरूरत नहीं समझते, उन्हें मै यह बात समझा नहीं सकता। पर मेरा

अपना अनुभव तो मुझे इसी ज्ञान पर ले जाता है कि जिसके नियमानुसार सारे विश्वका सचालन होता है। उस शाश्वत नियम मे अचल विश्वास रक्खे बिना पूर्णतम जीवन सम्भव नहीं है। इस विश्वास से विहीन व्यक्ति तो समुद्र से अलग आ पडने वाली उस बूँद के समान है, जो नष्ट हो कर ही रहती है, परन्तु जो बूँद समुद्र में ही रहती है वह उसकी गौरव-वृद्धि मे योग देती है और हमें प्राण-प्रद वायु पहुँचाने का सम्मान उसे प्राप्त होता है।

ह० से० २५-४-३६

: २० :

विद्यार्थियों के लिए

"हरिजन" के पिछले एक अक मे आपने 'एक युवक की कठिनाई' शीर्षक एक लेख लिखा है, जिसके सम्बन्ध मे मैं नम्रता-पूर्वक आपको यह लिख रहा हूँ। मुझे ऐसा लगता है कि आपने उस विद्यार्थी के साथ न्याय नहीं किया। यह प्रश्न आसानी से हल होनेवाला नहीं। उसके सवाल का आपने जो जवाब दिया है, वह सदिग्ध और सामान्य राय का है। आपने विद्यार्थियो से यह कहा है कि वे झूठी प्रतिष्ठा का ख़याल छोड कर साधारण मज-दूरो की तरह बन जायँ। यह सब सिद्धान्त की बात आदमी को कुछ बहुत रास्ता नहीं सुझाती और न आप-जैसे बहुत ही व्यावहारिक आदमी को यह बात शोभा देती है। इस प्रश्न पर आप अधिक

विस्तार के साथ विचार करने की कृपा करे और नीचे मै जो उदाहरण दे रहा हूँ, उसमे क्या रास्ता निकाला जाय, इसका तफसीलवार व्यावहारिक और व्यापक उत्तर दे।

मै लखनऊ-यूनिवर्सिटी मे एम० ए० का विद्यार्थी हूँ। प्राचीन भारतीय इतिहास मेरा विपय है। मेरी उम्र करीवन २१ साल की है। मै विद्या का प्रेमी हूँ और मेरी यह इच्छा है कि जीवन मे जितनी भी विद्या प्राप्त कर सकूँ, उतनी करूँ। आपका बताया हुआ जीवन का आदर्श भी मुझे प्रिय है। एकाध महीने मे मै एम० ए० फाइनल की परीक्षा दे दूंगा, और मेरी पढाई पूरी हो जायगी। इसके बाद मुझे 'जीवन मे प्रवेश' करना पड़ेगा।

मुझे अपनी पत्नी के अलावा ४ भाइयो, (मुझ से सब छोटे है, और एक की शादी भी हो चुकी है) २ वहिनो और माता-पिता का पोपण करना है। हमारे पास कोई पूँजी का साधन नही है। जमीन है, पर वहुत ही थोड़ी।

अपने भाई-वहनो की शिक्षा के लिए क्या करूँ ? फिर वहनो की शादी भी तो जल्दी करनी है। इस सवके अलावा घर-भर के लिए अन्न और वस्त्र का खर्चा कहाँ से लाकर जुटाऊँगा ?

मुझे मौज व टीमटाम से रहने का मोह नही है। मै और मेरे आश्रित-जन अच्छा नीरोगी जीवन विता सके, और वक्त-जरूरत का काम अच्छी तरह चलाता जाय, तो इतने से मुझे सन्तोप है। दोनो समय स्वास्थ्यकर आहार और ठीक-ठीक कपड़े मिलते जायँ, वस इतना ही मेरे सामने सवाल है।

पैसे के वारे मे मै ईमानदारी के साथ रहना चाहता हूँ। भारी सूद लेकर या शरीर वेचकर मुझे रोजी नही कमानी है। देश-सेवा करने की भी मुझे इच्छा है। अपने उस लेख मे आपने जो शर्ते रक्खी है, इन्हे पूरा करने के लिए मै तैयार हूँ।

पर मुझे यह नही सूझ रहा है कि मै करूँ क्या? शुरुआत कहाँ और कैसे की जाय? शिक्षा मुझे केवल किताबी और अव्यावहारिक मिली है। कभी-कभी मै सूत कातने का विचार सोचता हूँ, पर कातना सीखूं कैसे, और उस सूत का क्या होगा, इसका भी मुझे पता नही।

जिन परिस्थितियो मे मै पडा हुआ हूँ, उनमे आप मुझे क्या सन्तति-नियमन के कृत्रिम साधन काम मे लाने की सलाह देगे? सयम और ब्रह्मचर्य मे मेरा विश्वास है, पर ब्रह्मचारी वनने मे मुझे अभी कुछ समय लगेगा। मुझे भय है कि पूर्ण सयम की सिद्धि प्राप्त होने के पूर्व यदि मै कृत्रिम साधनो का उपयोग नही करूँगा, तो मेरी स्त्री के कई वच्चे पैदा हो जायगे, और इस तरह वैठे-ठाले आर्थिक वरवादी मोल ले लूँगा। और फिर मुझे ऐसा लगता है कि अपनी स्त्री से, उसके स्वाभाविक भावना-विकास से, कडे संयम का पालन कराना विलकुल ही उचित नही। आखिरकार साधारण स्त्री-पुरुपो के जीवन मे विपय-भोग के लिए तो स्थान है ही। मै उसमे अपवाद-रूप नही हूँ। और मेरी स्त्री को, आपके 'ब्रह्मचर्य' 'विपय-सेवन के खतरे' आदि विपयो के महत्त्वपूर्ण लेख पढने व समझने का मौका नही मिला, इसलिए

उनमे उन लडकियो के पति या उनके बड़े-बूढे खासी अच्छी स्थिति के ग्रेजुएट थे।

कातना कहाँ और कैसे सीखा जा सकता है, उसे इसका भी पता नहीं। उसकी यह लाचारी देख कर करुणा आती है। लखनऊ मे वह प्रयत्न-पूर्वक तलाश करे, तो कातना सिखाने-वाले उसे वहाँ कई युवक मिल सकते है, पर उसे अकेला कातना सीखकर बैठे रहने की जरूरत नहीं, हालाँकि सूत कातना भी पूरे समय का धन्धा होता जा रहा है, और वह ग्राम-वृत्ति वाले स्त्री-पुरुपो को पर्याप्त आजीविका दे सकने वाला उद्योग बनता जा रहा है। मुझे आशा है कि मैने जो कहा है,उसके बाद बाकी का सब यह विद्यार्थी खुद समझ लेगा।

अब सन्तति-नियमन के कृत्रिम साधनो के सम्बन्ध मे यहाँ भी उसकी कठिनाई काल्पनिक ही है। यह विद्यार्थी अपनी स्त्री की बुद्धि को जिस तरह आँक रहा है, वह ठीक नहीं। मुझे तो जरा भी शंका नही कि अगर वह साधारण स्त्रियो की तरह है, तो पति के सयम के अनुकूल वह सहज ही हो जायगी। विद्यार्थी खुद अपने मन से पूछ कर देखे कि उसके मन मे पर्याप्त सयम है या नही? मेरे पास जितने प्रमाण है, वे तो सब यही बताते है कि संयम-शक्ति का अभाव स्त्री की अपेक्षा पुरुष मे ही अधिक होता है, पर इस विद्यार्थी को अपनी संयम रखने की अशक्ति कम समझ कर उसे हिसाब मे से निकाल देने की जरूरत नही। उसे बडे कुटुम्ब की सम्भावना का मर्दानगी के साथ सामना

करना चाहिए, और उस परिवार के पालन-पोषण करने का अच्छे-से-अच्छा जरिया ढूँढ लेना चाहिए। उसे जानना चाहिए कि करोड़ों आदमियों को इन कृत्रिम साधनों का पता ही नहीं, इन साधनों को काम में लाने वालों की संख्या तो बहुत-बहुत होगी तो कुछेक हजार की ही होगी। उन करोड़ों की बात का भय नहीं होता कि बच्चों का पालन वे किस तरह करेंगे, यद्यपि बच्चे वे सब माँ-बाप की इच्छा से पैदा नहीं होते। मैं चाहता हूँ कि मनुष्य अपने कर्म के परिणाम का सामना करने से इन्कार न करे। ऐसा करना कायरता है। जो लोग कृत्रिम साधनों को काम में लाते हैं, वे संयम का गुण नहीं सीख सकते। उन्हें इसकी जरूरत नहीं पड़ेगी। कृत्रिम साधनों के साथ भोगा हुआ भोग बच्चों का आना तो रोकेगा, पर पुरुष और स्त्री दोनों की—स्त्री की अपेक्षा पुरुष की अधिक—जीवन-शक्ति को वह चूस लेगा। आसुरी वृत्ति के खिलाफ युद्ध करने से इन्कार करना नामर्दी है। पत्र-लेखक अगर अनचाहे बच्चों को रोकना चाहता है, तो उसके सामने एक मात्र अचूक और सम्मानित मार्ग यही है कि उसे संयम-पालन करने का निश्चय कर लेना चाहिए। सौ बार भी उसके प्रयत्न निष्फल जायँ तो भी क्या? सच्चा आनन्द तो युद्ध करने में है, उसका परिणाम तो ईश्वर की कृपा से ही आता है।

ह० से० २४-४-३७

: २१ :

विद्यार्थियों की दशा

एक वहन, जिन्हे अपनी जिम्मेदारी का पूरा ख्याल है, लिखती है —

"जव तक हमारे वच्चे वीर्य की रक्षा करना नही सीखते, तव तक हिन्दुस्तान को जैसे आदमियो की जरूरत है, वैसे कभी नही मिल सकते। हिन्दुस्तान मे कोई १६ वर्षो तक, लड़कों के स्कूलो का भार मुझ पर रहा है। यह देखकर रुलाई आती है कि हमारे वहुत-से हिन्दू, मुसलमान, ईसाई लडके स्कूल की पढ़ाई शुरू करते है जोश, ताकत, और उम्मीदो से भरकर, लेकिन खत्म करते है शरीर से निकम्मे वनकर। गिन-कर सैकड़ो वार मैंने देखा है कि इसके कारण का पता ठेठ वीर्य-नाश, अप्राकृतिक कर्म या वाल-विवाह मे ही मिलता है। अभी आज मेरे पास ४२ लड़को के नाम है। ये अप्राकृतिक कर्म के दोषी है और इनमे से एक भी १३ साल से अधिक का नही है। शिक्षक और माता-पिता ऐसी हालत का होना गलत मानेगे, लेकिन अगर सही तरीको से काम लिया जाय तो व्याधि का पता तुरन्त ही लग जायगा और करीव-करीव हमेशा ही लडके अपना गुनाह कुवूल कर लेगे। इनमे से अधिक लड़के कहते है कि यह ऐव उन्होने स्याने आदमियो से, कभी-कभी अपने सम्वधियो से ही सीखा है।"

यह कोई खयाली तसवीर नही है। यह वह सचाई है, जिसे जानने वाले स्कूलो के कितने-एक मास्टर दवा जाते है। मै इसे पहले से जानता था। आज से कोई आठ साल हुए, दिल्ली के किसी स्कूल-मास्टर ने मेरा ध्यान इस ओर दिलाया था। इसके इलाज के बारे मे अबतक खानगी मे ही मै बाते करता आया हूँ और चुप रहा हूँ। यह दोष सिर्फ हिन्दुस्तान-भर मे ही परिमित नही है, मगर बाल विवाह के पाप के कारण हम पर इसका और भी अधिक मारक प्रभाव पडता है। इस बहुत ही नाजुक और मुश्किल सवाल की आम चर्चा करना जरूरी हो गया है, क्योंकि अबसे कुछ साल पहले जिस स्वच्छन्दता से स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध की बातो पर विचार करना गैर-मुमकिन था, आज उसके साथ हम प्रतिष्ठित समाचार-पत्रो मे भी इसपर बहस होते देखते है।

सभोग को देह और दिमाग की तन्दुरुस्ती के लिए फायदेमन्द, नैतिक जरूरी और स्वाभाविक समझने की प्रथा ने इस पाप की वृद्धि की है। हमारे सुशिक्षित पुरुषो के गर्भ-निरोधक साधनो के स्वछन्द व्यवहार के समर्थन ने इस कामवासना के कीडो की वृद्धि के लिए समुचित वातावरण पैदा कर दिया है। कमसिन लडको के नाजुक और सग्राहक दिमाग ऐसे नतीजे बहुत जल्द निकाल लेते है कि उनकी अधार्मिक इच्छाये अच्छी और उचित है। इस मारक पाप के प्रति माता-पिता और शिक्षक, बहुत ही बुरी, बल्कि पाप के बराबर, उदासीनता और सहनशीलता

दिखलाते है । मेरी समझ मे, सामाजिक वातावरण को पूरा-पूरा शुद्ध बनाये बिना इस गुनाह को और कुछ नहीं रोक सकता, विषय-भोग के खयालो से भरे हुए वातावरण का अज्ञात और सूक्ष्म प्रभाव देश के विद्यार्थियो के मन पर बिना पडे रह ही नहीं सकता। नागरिक जीवन की परिस्थिति, साहित्य, नाटक, सिनेमा, घर की रचना, कितने एक सामाजिक रिवाजे, सबका एक ही असर होता है, वह है कामवासना की वृद्धि। छोटे लडको के लिए, जिन्हे अपनी इस पाशविक प्रवृत्ति का पता लग गया है, इसके जोर को रोकना गैर-मुमकिन है। ऊपरी इलाजो से काम नहीं चलने का। यदि नयी पीढी के प्रति वे अपना कर्तव्य पूरा करना चाहते है तो बडो को पहले अपने से ही यह सुधार शुरू करना होगा।

हि० न० ६-६-२६

: २२ :

ब्रह्मचर्य पर नया प्रकाश

अब एक नई बात आप लोगो से कहना चाहता हूँ। सोचा था कि विनोबा सुनाये, पर अब समय है तो स्वयं मै कह देता हूँ। मेरा स्वभाव ही ऐसा है कि अच्छी बात सबके साथ बॉट लेता हूँ। बात का आरम्भ तो बहुत वर्षो पुराना है। मै जुलू-युद्ध मे गया था। देखो, ईश्वर का खेल इसी तरह चलता है। मेरा निश्चय होगया कि जिसको जगत की सेवा करनी है, उसके

लिए ब्रह्मचर्य पालन करना आवश्यक है। विवाहित दम्पती को भी ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। इसमें मेरा मतलब यह था कि उन्हें प्रजोत्पादक क्रिया मे नहीं पड़ना चाहिए। मैं यह समझता था कि जो प्रजोत्पादन करते हैं, वे ब्रह्मचारी नहीं हो सकते। इसलिए मैंने ब्रह्मचर्य का आदर्श छगनलाल आदि के सामने रक्खा। उस वक्त तो मैं बिलकुल जवान था। और जवान तो सब कुछ कर सकता है। मैं आपसे कह दूँ कि आप सब ब्रह्मचारी बने तो क्या वह होने वाली बात है? वह तो एक आदर्श है, इसलिए मैं तो विवाह भी करा देता हूँ। एक आदर्श देते हुए भी यह तो जानता ही हूँ कि ये लोग भोग भी करेंगे। प्रजोत्पादन और ब्रह्मचर्य एक दूसरे से विरोधी है, ऐसा मेरा खयाल रहा।

पर उस दिन विनोबा मेरे पास एक उलझन लेकर आये। एक शास्त्र-वचन है, जिसकी कीमत मैं पहले नहीं जानता था। उस वचन ने मेरे दिल पर एक नया प्रकाश डाल दिया। उसका विचार करते-करते मैं बिल्कुल थक गया, उसमें तन्मय होगया। अब भी मैं उसीसे भरा हूँ। ब्रह्मचर्य का जो अर्थ शास्त्रों मे बताया है, वह अति शुद्ध है। नैष्ठिक ब्रह्मचारी वह है, जिसने जन्म से ही ब्रह्मचर्य का पालन किया हो। स्वप्न मे भी जिसका वीर्य-स्खलन न हुआ हो, लेकिन मैं नहीं जानता था कि प्रजोत्पत्ति के हेतु जो सम्भोग करता है उसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी क्यों माना गया है। कल यह बुलन्द बात मेरी समझ में आ गई। जो दम्पती गृहस्थाश्रम में रहते हुए केवल प्रजोत्पत्ति के हेतु ही परस्पर सयोग और

एकान्त करते है, वे ठीक ब्रह्मचारी ही हैं। आज हम जिसे विवाह कहते हैं, वह विवाह नहीं, उसका आडम्बर है। जिसे हम भोग कहते है, वह भ्रष्टाचार है। यद्यपि मै कहता था कि प्रजोत्पत्ति के लिए विवाह है, फिर भी मै यह मानता था कि इसका मतलब सिर्फ यही है कि दोनो को प्रजोत्पत्ति से डर न मालूम हो, उसके परिणाम को टालने का प्रयत्न न हो, और भोग मे दोनो की सहमति हो। मै नहीं जानता कि उसका इससे भी अधिक कोई मतलब होगा, पर यह भी शुद्ध विवाह नही है। शुद्ध विवाह मे तो केवल ब्रह्मचर्य ही है। शुद्ध विवाह कब कहा जाय? दम्पती प्रजोत्पत्ति तभी करे जब जरूरत हो, और उसकी जरूरत हो तभी एकान्त भी करे। अर्थात् सम्भोग प्रजोत्पादन को कर्तव्य समझकर तथा उसके लिए ही हो। इसके अतिरिक्त कभी एकान्त न करे। एकान्तवास भी न करे। यदि एक पुरुप इस प्रकार हेतुपूर्वक सम्भोग को छोड़कर स्थिर वीर्य हो, तो वह नैष्ठिक ब्रह्मचारी के बराबर हैं। सोचिए, ऐसा एकान्तवास जीवन मे कितनी बार हो सकता है? वीर्यवान् नीरोग स्त्री-पुरुषो के लिए तो जीवन मे एक ही बार ऐसा अवसर हो सकता है। ऐसे व्यक्ति क्यो नैष्ठिक ब्रह्मचारी के समान न माने जायँ? जो बात मै पहले थोड़ी-थोड़ी समझता था वह आज सूर्य की तरह स्पष्ट हो गई है। जो विवाहित है, इसे ध्यान मे रक्खे। पहले भी मैने यह बात बताई थी, पर उस समय मेरी इतनी श्रद्धा नहीं थी। उसे मै अव्यावहारिक समझता था। आज व्यावहारिक समझता हूँ।

पशु-जीवन मे दूसरी वात हो सकती है, लेकिन मनुष्य के विवाहित जीवन का यह नियम होना चाहिए कि कोई भी पति-पत्नी विना आवश्यकता के प्रजोत्पत्ति न करे और विना प्रजोत्पादन के हेतु के सम्भोग न करे।

ह० से० ३-४-३७

: २३ :

धर्म-संकट

एक सज्जन लिखते है —

"करीब ढाई साल हुआ, हमारे शहर मे एक घटना होगई थी जो इस प्रकार है —

एक वैश्य ग्रहस्थ की १६ बरस की एक कुमारी कन्या थी। इस लडकी का मामा, जिसकी उम्र लगभग २१ वर्ष की थी, स्थानीय कालेज मे पढता था। यह तो मालूम नहीं कि कब से इन दोनो मामा और भाँजी मे प्रेम था, पर जब वात खुल गई तो उन दोनो ने आत्म-हत्या कर ली। लडकी तो फौरन ही जहर खाने के वाद मर गई, पर लडका दो रोज वाद अस्पताल मे मरा। लड़की को गर्भ भी था। इस बात की शुरू-शुरू मे तो खूब चर्चा चली। यहाँतक कि अभागे माँ-वाप को शहर मे रहना भारी हो गया, पर वक्त के साथ-साथ यह बात भी दब गई और लोग भूलने लगे। कभी-कभी, जब ऐसी मिलती-जुलती बात सुनने को मिलती है, तब पुरानी वातो की भी चर्चा होती है और यह

वाक़या भी दोहरा दिया जाता है, पर उस जमाने मे, जब क़रीब-क़रीब सभी लड़की को और लड़के को भी बुरा-भला कह रहे थे, मैने यह राय अर्ज की थी कि ऐसी हालत मे समाज को विवाह कर लेने की इजाजत दे देनी चाहिए। इस बात से समाज मे खूब बवण्डर उठा। आपकी इस पर क्या राय है?"

मैने स्थान का और लेखक का नाम नही दिया है, क्योकि लेखक नही चाहते कि उनका अथवा उनके शहर का नाम प्रकाशित किया जाय। तो भी इस प्रश्न पर जाहिर चर्चा आवश्यक है। मेरी तो यह राय है कि ऐसे सम्बन्ध जिस समाज मे त्याज्य माने जाते है, वहाँ विवाह का रूप वे यकायक नही ले सकते, लेकिन किसी की स्वतन्त्रता पर समाज या सम्बन्धी आक्रमण क्यो करे? ये मामा और भाँजी सयानी उम्र के थे, अपना हित-अहित समझ सकते थे। उन्हे पति-पत्नी के सम्बन्ध से रोकने का किसी को हक़ नही था। समाज भले ही इस सम्बन्ध को अस्वीकार करता, पर उन्हे आत्म-हत्या करने तक जाने देना तो बहुत बड़ा अत्याचार था।

उक्त प्रकार के सम्बन्ध का प्रतिबन्ध सर्वमान्य नही है। ईसाई, मुसलमान, पारसी इत्यादि कौमो मे ऐसे सम्बन्ध त्याज्य नही माने जाते है—हिन्दुओ मे भी प्रत्येक वर्ण मे त्याज्य नही है। उसी वर्ण मे भिन्न प्रान्त मे भिन्न प्रथा है। दक्षिण मे उच्च माने जाने वाले ब्राह्मणो मे ऐसे सम्बन्ध त्याज्य नही, बल्कि स्तुत्य भी माने जाते है। मतलब यह है कि ऐसे प्रतिबन्ध रूढ़ियो से बने है।

यह देखने में नहीं आता कि ये प्रतिबन्ध किसी धार्मिक या तात्त्विक निर्णय से बने हैं।

लेकिन समाज के सब प्रतिबन्धों को नवयुवक-वर्ग छिन्न-भिन्न करके फेंक दे, यह भी नहीं होना चाहिए। इसलिए मेरा यह अभिप्राय है कि किसी समाज में रूढ़ि का त्याग करवाने के लिए लोक-मत तैयार कराने की आवश्यकता है। इस बीच में व्यक्तियों को धैर्य रखना चाहिए। धैर्य न रख सकें तो बहिष्कारादि को सहन करना चाहिए।

दूसरी ओर, समाजका यह कर्त्तव्य है कि जो लोग समाज-बन्धन तोडें, उनके साथ निर्दयता का वर्त्ताव न किया जाय। बहिष्कारादि भी अहिंसक होने चाहिएँ।

उक्त आत्म-हत्याओं का दोष, जिस समाज में वे हुई, उसपर अवश्य है, ऐसा ऊपर के पत्र से सिद्ध होता है।

ह० से० १-५-३७

: २४ :

विवाह की मर्यादा

श्री हरिभाऊ उपाध्याय लिखते हैं—

"'हरिजन सेवक' के इसी अंक में 'धर्म-संकट' नामक आपका लेख पढ़ा। उसमें आपने लिखा है कि "उक्त प्रकार के (अर्थात् मामा-भाँजी के सम्बन्ध जैसे) सम्बन्ध का प्रतिबन्ध

सर्वमान्य नहीं है। · · ऐसे प्रतिबन्ध रूढ़ियों से बने है। यह देखने मे नहीं आता कि ये प्रतिबन्ध किसी धार्मिक या तात्त्विक निर्णय से बने है।"

मेरा अनुमान यह है कि ये प्रतिबन्ध शायद सन्तानोत्पत्ति की दृष्टि से लगाये गए है। इस शास्त्र के ज्ञाता ऐसा मानते है कि विजातीय तत्वो के मिश्रण से सन्तति अच्छी होती है। इसलिए सगोत्र और सपिण्ड कन्याओ का पाणिग्रहण नहीं किया जाता।

यदि यह माना जाय कि यह केवल रूढि है, तो फिर सगी और चचेरी बहनो के सम्बन्ध पर भी कैसे आपत्ति उठाई जा सकती है ? यदि विवाह का हेतु सन्तानोत्पत्ति ही है और सन्तानोत्पादन के ही लिए दम्पती का सयोग करना योग्य है, तो फिर वर-कन्या के चुनाव के औचित्य की कसौटी सु-प्रजनन की क्षमता ही होनी चाहिए। क्या और कसौटियाँ गौण समझी जायँ ? यदि हाँ, तो किस क्रम से, यह प्रश्न सहज उठता है। मेरी राय मे वह इस प्रकार होना चाहिए.—

(१) पारस्परिक आकर्षण और प्रेम।

(२) सुप्रजनन की क्षमता।

(३) कौटुम्बिक और व्यावहारिक सुविधा।

(४) समाज और देश की सेवा।

(५) आध्यात्मिक उन्नति।

आपका इस सम्बन्ध मे क्या मत है ?

हिन्दू-शास्त्रो मे पुत्रोत्पत्ति पर जोर दिया गया है। सधवाओ

को आशीर्वाद दिया जाता है, "अष्टपुत्रा सौभाग्यवती भव।" आप जो यह प्रतिपादन करते हैं कि दम्पती सन्तान के लिए संयोग करें तो इसका क्या यही अर्थ है कि सिर्फ एक ही सन्तान उत्पन्न करें, फिर वह लड़का हो या लड़की ? वंशवर्धन की इच्छा के साथ ही 'पुत्र से नाम चलता है' यह इच्छा भी जुड़ी हुई मालूम होती है। केवल लड़की से इस इच्छा का कैसे समाधान हो सकता है ? बल्कि अभीतक समाज में 'लड़की के जन्म' का उतना स्वागत नहीं होता, जितना कि लड़के के जन्म का होता है। इसलिए यदि इन इच्छाओं को सामाजिक माना जाय तो फिर एक लड़का और एक लड़की—इस तरह दो सन्तति पैदा करने की छूट देना क्या अनुचित होगा ?

केवल सन्तानोत्पादन के लिए संयोग करने वाले दम्पती ब्रह्मचारीवत ही समझे जाने चाहिए—यह ठीक है। यह भी सही है कि संयत जीवन में एक ही बार के संयोग से गर्भ रह जाता है। पहली बात की पुष्टि में एक कथा प्रचलित है—

वशिष्ठ की कुटिया के सामने एक नदी बहती थी। दूसरे किनारे विश्वामित्र तप करते थे। वशिष्ठ गृहस्थ थे। जब भोजन पक जाता, तो पहले अरुन्धती थाल परोसकर विश्वामित्र को खिलाने जाती, बाद को वशिष्ठ के घर पर सब लोग भोजन करते। यह नित्य-क्रम था। एक रोज बारिश हुई और नदी में बाढ़ आगई। अरुन्धती उस पार न जा सकी। उसने वशिष्ठ से इसका उपाय पूछा। उन्होंने कहा—'जाओ,

नदी से कहना, मैं सदा निराहारी विश्वामित्र को भोजन देने जा रही हूँ, मुझे रास्ता दे दो।' अरुन्धती ने इसी प्रकार नदी से कहा—और उसने रास्ता दे दिया। तब अरुन्धती के मन मे बडा आश्चर्य हुआ कि विश्वामित्र रोज तो खाना खाते है, फिर निराहारी कैसे हुए? जब विश्वामित्र खाना खा चुके, तब अरुन्धती ने उनसे पूछा—'मै वापिस कैसे जाऊँ, नदी मे तो बाढ है?' विश्वामित्र ने उलट कर पूछा—'तो आई कैसे?' उत्तर में अरुन्धती ने वशिष्ठ का पूर्वोक्त नुसखा बतलाया। तब विश्वामित्र ने कहा—'अच्छा, तुम नदी से कहना, सदा ब्रह्मचारी वशिष्ठ के यहाँ लौट रही हूँ। नदी, मुझे रास्ता दे दो।' अरुन्धती ने ऐसा ही किया और उसे रास्ता मिल गया। अब तो उसके अचरज का ठिकाना न रहा। वशिष्ठ के सौ पुत्रो की तो वह स्वयं ही माता थी। उसने वशिष्ठ से इसका रहस्य पूछा कि विश्वामित्र को सदा निराहारी और आपको सदा ब्रह्मचारी कैसे मानूँ? वशिष्ठ ने बताया—"जो केवल शरीर-रक्षण के लिए ही ईश्वरार्पण बुद्धि से भोजन करता है, वह नित्य भोजन करते हुए भी निराहारी ही है, और जो केवल स्व-धर्म पालन के लिए अनासक्ति-पूर्वक सन्तानोत्पादन करता है, वह संयोग करते हुए भी ब्रह्मचारी ही है।"

परन्तु इसमे और मेरी समझ मे तो शायद हिन्दू-शास्त्र मे भी केवल एक सन्तति—फिर वह कन्या हो या पुत्र—का विधान नहीं है। अतएव यदि आपको एक पुत्र और एक पुत्री का नियम मान्य हो, तो मै समझता हूँ, बहुतेरे दम्पतियों को समाधान हो

जाना चाहिए। अन्यथा मुझे तो ऐसा लगता है कि बिना विवाह किये एक बार ब्रह्मचारी रह जाना शक्य हो सकता है, परन्तु विवाह करने पर केवल सन्तानोत्पादन के लिए, और फिर भी प्रथम सन्तति के ही लिए संयोग करके फिर आजन्म संयम में रहना उससे कहीं कठिन है। मेरा तो ऐसा मत बनता जा रहा है कि 'काम' मनुष्य में स्वाभाविक प्रेरणा है। उसमें संयम सु-संस्कार का सूचक है। 'सन्तति के लिए संयोग' का नियम बना देने से सु-संस्कार, संयम या धर्म की तरफ मनुष्य की गति होती है, इसलिए यह वाञ्छनीय है। सन्तानोत्पत्ति के ही लिए संयोग करने वाले संयमी का आदर करूँगा, कामेच्छा की तृप्ति करने वाले को भोगी कहूँगा, पर उसे पतित नहीं मानना चाहता, न ऐसा वातावरण ही पैदा करना ठीक होगा कि पतित समझकर लोग उसका तिरस्कार करें। इस विचार में मेरी कहीं गलती हो, तो बतावें।"

विवाह में जो मर्यादा बाँधी गई है, उसका शास्त्रीय कारण मैं नहीं जानता। रूढ़ि को ही, जो मर्यादा की वृद्धि के लिए बनाई जाती है, नैतिक कारण मानने में कोई आपत्ति नहीं है। सन्तान-हित की दृष्टि से ही अगर भाई-बहन के सम्बन्ध का प्रतिबन्ध योग्य है, तो चचेरी बहन इत्यादि पर भी प्रतिबन्ध होना चाहिए, लेकिन भाई-बहन के सम्बन्ध या ऐसे सम्बन्ध के अतिरिक्त कोई प्रतिबन्ध धर्म में नहीं माना जाता। इसलिए रूढ़ि का जो प्रतिबन्ध जिस समाज में हो, उसका अनुसरण उचित मालूम

देता है। नैतिक विवाह के लिए जो पॉच मर्यादाऍ हरिभाऊ जी ने रक्खी है, उनका क्रम बदलना चाहिए। पारस्परिक प्रेम और आकर्षण को अन्तिम स्थान देना चाहिए। अगर उसे प्रथम स्थान दिया जाय, तो दूसरी सब शर्त्ते उसके आश्रय मे जाने से निरर्थक बन सकती है। इसलिए उक्त-क्रम मे आध्यात्मिक उन्नति को प्रथम स्थान देना चाहिए। समाज और देश-सेवा को दूसरा स्थान दिया जाय। कौटुम्बिक और व्यावहारिक सुविधा को तीसरा। पारस्परिक आकर्षण और प्रेम को चौथा। इसका अर्थ यह हुआ कि जिस जगह इन प्रथम तीन शर्त्तों का अभाव हो, वहॉ पारस्परिक प्रेम को स्थान नही मिल सकता। अगर प्रेम को प्रथम स्थान दिया जाय तो वह सर्वोपरि बनकर दूसरो की अवगणना कर सकता है और करता है, ऐसा आजकल के व्यवहार मे देखने मे आता है। प्राचीन और अर्वाचीन नवल कथाओ मे भी यह पाया जाता है। इसलिए यह कहना होगा कि उपर्युक्त तीन शर्त्तों का पालन होते हुए भी जहॉ पारस्परिक आकर्षण नही है वहॉ विवाह त्याज्य है। सुप्रजनन की क्षमता को शर्त्त न माना जाय, क्योकि यही एक वस्तु विवाह का कारण है, विवाह की शर्त्त नही।

हिन्दू-शास्त्र मे पुत्रोत्पत्ति पर अवश्य जोर दिया गया है। यह उस काल के लिए ठीक था, जब समाज में शस्त्र-युद्ध को अनिवार्य स्थान मिला हुआ था, और पुरुप-वर्ग की बडी आवश्यकता थी। उसी कारण से एक से अधिक पत्नियो की भी इजाजत थी और अधिक पुत्रो से अधिक बल माना जाता था। धार्मिक दृष्टि

से देखे तो एक ही सन्तति 'धर्मज' या 'धर्मजा' है। मै पुत्र और पुत्री के बीच भेद नहीं करता हूँ, दोनो एक समान स्वागत के योग्य है।

वशिष्ठ, विश्वामित्र का दृष्टान्त सार रूप मे अच्छा है। उसे शब्दश सत्य अथवा शक्य मानने की आवश्यकता नहीं। उसमे इतना ही सार निकालना काफी है कि सन्तानोत्पत्ति के ही अर्थ किया हुआ सयोग ब्रह्मचर्य का विरोधी नहीं है। कामाग्नि की तृप्ति के कारण किया हुआ सयोग त्याज्य है। उसे निन्द्य मानने की आवश्यकता नहीं। असख्य स्त्री-पुरुषो का मिलन भोग के ही कारण होता है, और होता रहेगा। उससे जो दुष्परिणाम होते रहते है, उन्हे भोगना पडेगा। जो मनुष्य अपने जीवन को धार्मिक बनाना चाहता है, जो जीव-मात्र की सेवा को आदर्श समझ कर ससार-यात्रा समाप्त करना चाहता है, उसके लिए ही ब्रह्मचर्यादि मर्यादा का विचार किया जा सकता है। और ऐसी मर्यादा आवश्यक भी है।

ह० से० १५-५-३७

: २५ :

सन्तति-निरोध

प्रश्न—दरिद्र औरतो की सन्तान-वृद्धि रोकने के लिए क्या उपाय करना चाहिए ?

उत्तर—हमारा तो कर्त्तव्य यही है कि उन्हे संयम का धर्म ही समझाये। कृत्रिम उपाय तो मर जाने जैसी बात है। और मै नहीं

समझता कि देहाती स्त्रियाँ उन्हे अपनावेगी। उनके बच्चो के लिए दूध प्राप्त करने की चेष्टा करनी चाहिए।

प्रश्न—सन्तति-निरोध के लिए स्त्रियाँ तो संयम करना चाहे, पर पुरुष बलात्कार करे, तब क्या किया जाय ?

उत्तर—यह तो सच्चे स्त्री-धर्म का सवाल है। सतियो को मै पूजता हूँ, पर उन्हे कुएँ मे नही गिराना चाहता। स्त्री का सच्चा धर्म तो द्रौपदी ने बताया है। पति अगर गिरता हो तो स्त्री न गिरे। स्त्री के संयम मे बाधा डालना शुद्ध व्यभिचार है। यदि वह बलात्कार करने आवे तो उसे थप्पड़ मार कर भी सीधा करना उसका धर्म है। व्यभिचारी पति के लिए वह दरवाजा बन्द कर दे। अधर्मी पति की पत्नी बनने से उसे इन्कार करना चाहिए। हमे स्त्रियो के अन्दर यह हिम्मत पैदा कर देनी चाहिए।

प्रश्न—मध्यम वर्ग की स्त्रियो का सन्तति-निरोध के विषय मे क्या कर्त्तव्य है ?

उत्तर—मध्यम-वर्ग की हो या बादशाही-वर्ग की हो, भोग भोगना हमारे हाथ मे है, लेकिन परिणाम के बादशाह हम नही बन सकते। सिद्धि होगी या नही, यह शंका करना हमारा काम नही है। हमारा काम तो सिर्फ यही है कि सत्य-धर्म सिखावे। मध्यम-श्रेणी की स्त्रियाँ नये-नये उपाय काम मे लावे तो हमे मना करना चाहिए। संयम ही एक-मात्र उपाय हो सकता है।

प्रश्न—पति को उपदंश जैसा कठिन रोग हो तब स्त्री क्या करे ?

उत्तर—इस हालत मे सन्तति-निरोध के उपायो से भी स्त्री का बचाव नहीं हो सकता। ऐसे पति को क्लीव ही समझ कर उसे दूसरी शादी कर लेनी चाहिए, पर इसके लिए स्त्रियॉ इतनी विद्या सीख ले, जिससे वे स्वावलम्बी बन जायॅ।

(गॉधी-सेवा-सघ के द्वितीय अधिवेशन के विवरण मे से १०-४-३७)

: २६ :

काम-शास्त्र

गुजरात विद्यापीठ से हाल ही पारगत-पदवी प्राप्त श्री मगनभाई देसाई के ७ अक्तूबर के पत्र से नीचे लिखा अश यहॉ देता हूॅ—

"इस बार के 'हरिजन' मे आपका लेख पढ कर मेरे मन मे विचार आया कि मै भी एक प्रश्न चर्चा के लिए आपके सामने पेश करूॅ। इस विषय मे आपने अबतक शायद ही कुछ कहा या लिखा है। वह है बालको को और खास करके विद्यार्थियो को काम-विज्ञान सिखाना। आप तो जानते ही है कि श्री गुजरात मे इस विषय के बडे हामी है। खुद मुझे तो इस बात मे हमेशा अन्देशा ही रहा है, बल्कि मेरा तो मत है कि वे इस विषय के अधिकारी भी नहीं है। परिणाम से तो इस विषय की [illegible]ष्टता ही प्रकट होती जाती है। वे तो शायद ऐसा ही मानते दिखाई देते हैं कि काम-विज्ञान के न जानने से ही शिक्षा और समाज मे यह बिगाड हुआ है। नवीन मानस-शास्त्र भी बताता है कि यही

सुप्त काम-भाव मानव-प्रवृत्ति का उद्भव-स्थान है। 'काम एप: क्रोध एप.'--इससे आगे ये लोग जाते ही नही। हमारा एक दिन मुझसे कहता था--'तो आपको यह कहाँ मालूम है कि हरेक के अन्दर काम नामक राक्षस रहता है ?' और इसके फलस्वरूप उसकी नीति-भावना जागृत होने के बदले उलटी जड़ होती हुई दिखाई दी। इस तरह गुजरात मे आजकल काम-विज्ञान के शिक्षण के नाम रप बहुत-कुछ हो रहा है। इस विपय पर पुस्तके भी लिखी गई हैं। संस्करण-पर-सस्करण छपते है और हजारो की सख्या मे ये बिकती है। कितने ही साप्ताहिक इस विपय के निकलते है और उनकी विक्री भी खूब होती है। खैर, यह तो जैसा समाज होता है वैसा उसे परोसनेवाले मिल ही जाते है, किन्तु इससे सुधारक की दशा और भी अटपटी हो जाती है।

"इसलिए मै चाहता हूँ कि आप इसकी शिक्षा के विपय में सार्वजनिकरूप से चर्चा करे। क्या शिक्षा के लिए काम-शास्त्र के शिक्षण की आवश्यकता है ? कौन उसकी शिक्षा देने का और कौन उसे पाने का अधिकारी है ? मामूली भूगोल-गणित की तरह क्या सबको उसकी शिक्षा दी जानी चाहिए ? उसकी क्या मर्यादा है और उसको ठहरावे भी कौन ? और हमारे रगोरेशे मे पैठे हुए इस शत्रु की मर्यादा इससे उल्टी दिशा मे बाँधना उचित है या इस तरह उसे शुभ नाम का गौरव देने की तरफ ? ऐसे अनेक तरह के सवाल मन मे उठते है। आशा है कि आप इस विपय पर अवश्य रोशनी डालेगे।"

इस पत्र को इतने दिन तक मैंने इसी आशा से रख छोड़ा था कि किसी दिन मैं इसमें उठाये गये प्रश्नों पर कुछ लिखूँगा। इस बीच मैं बारहवीं गुजराती-साहित्य-परिषद् का प्रमुख बनकर वापस सेगाँव आ पहुँचा। विद्यापीठ में चार दिन जो रहा तो गुजराती भाई-बहनों के सम्पर्क में आने से पुरानी स्मृतियाँ ताजी हो आईं। उक्त पत्र के लेखक भी मिले। उन्होंने मुझसे पूछा भी, "मेरे उस पत्र का क्या हुआ?" "मेरे साथ-साथ वह सफर कर रहा है। मैं उसके बारे में जरूर लिखूँगा।" यह जवाब देकर मैंने मगन भाई को कुछ तसल्ली दी थी।

अब उनके असली विषय पर आता हूँ। क्या गुजरात में, और क्या दूसरे प्रान्तों में, सब जगह कामदेव मामूल के माफिक विजय प्राप्त कर रहे हैं। आजकल की उनकी विजय में एक विशेषता यह है कि उनके शरणागत नर-नारीगण उनको धर्म मानते दिखाई देते हैं। जब कोई गुलाम अपनी बेड़ी को शृंगार समझकर पुलकित होता है तब कहना चाहिए कि उसके सरदार की पूरी विजय हो गई। इस तरह कामदेव की विजय देखते हुए भी मुझे इतना विश्वास है कि यह विजय क्षणिक है, तुच्छ है और अन्त में डंक-कटे बिच्छू की तरह निस्तेज हो जाने वाली है। ऐसा होने के पहले पुरुषार्थ की तो आवश्यकता है ही। यहाँ मेरा यह आशय नहीं है कि अन्त में तो कामदेव की हार होने ही वाली है, इसलिए हम सुस्त या गाफिल बनकर बैठे रहें। काम पर विजय प्राप्त करना स्त्री-पुरुषों का एक परम कर्त्तव्य है। उस पर विजय प्राप्त

किये बिना स्वराज्य असम्भव है, स्वराज्य बिना स्वराज अथवा राम-राज होगा ही कहाँ से ? स्वराज्य-विहीन स्वराज खिलौने के आम की तरह समझना चाहिए। देखने मे बड़ा सुन्दर, पर जब उसे खोला तो अन्दर पोल-ही-पोल। काम पर विजय प्राप्त किये बिना कोई सेवक हरिजन की, कौमी ऐक्य की, खादी की, गौ-माता की, ग्रामवासी की, सेवा कभी नहीं कर सकता। इस सेवा के लिए बौद्धिक सामग्री बस होने की नहीं। आत्मबल के बिना ऐसी महान् सेवा असम्भव है। और आत्म-बल प्रभु के प्रसाद के बिना अशक्य है। कामी को प्रभु का प्रसाद मिला हो—ऐसा अबतक देखा नहीं गया।

तो मगन भाई ने यह सवाल पूछा है कि हमारे शिक्षा-क्रम मे काम-शास्त्र के लिए स्थान है या नहीं, यदि है तो कितना ? काम-शास्त्र दो प्रकार का होता है—एक तो है काम पर विजय प्राप्त कराने वाला, उसके लिए तो शिक्षण-क्रम मे स्थान होना ही चाहिए। दूसरा है, काम को उत्तेजन देने वाला शास्त्र। यह सर्वथा त्याज्य है। सब धर्मों ने काम को शत्रु माना है। क्रोध का नम्बर दूसरा है। गीता तो कहती है—काम से ही क्रोध की उत्पत्ति होती है। वहाँ काम का व्यापक अर्थ लिया गया है। हमारे विषय से सम्बन्ध रखने वाला 'काम' शब्द प्रचलित अर्थ मे इस्तैमाल किया गया है।

ऐसा होते हुए भी यह प्रश्न बाकी रहता है कि बालक-बालिकाओं को गुह्येन्द्रियों का और उनके व्यापार का ज्ञान दिया जाय

या नहीं ? मैं समझता हूँ कि यह ज्ञान एक हद तक आवश्यक है। आज कितने ही बालक-बालिकायें शुद्ध ज्ञान के अभाव मे अशुद्ध ज्ञान प्राप्त करते है और वे इन्द्रियों का बहुत दुरुपयोग करते हुए पाये जाते है। आँख होते हुए भी हम नहीं देखते। इस तरह हम काम पर विजय नहीं पा सकते। बालक-बालिकाओं को उन इन्द्रियों के उपयोग-दुरुपयोग का ज्ञान देने की आवश्यकता मैं मानता हूँ। मेरे हाथ—नीचे जो बालक-बालिकाये रहे है उन्हे मैंने ऐसा ज्ञान देने का प्रयत्न भी किया है, परन्तु यह शिक्षण और ही दृष्टि से दिया जाता है। इन इन्द्रियो का ज्ञान देते हुए सयम की शिक्षा दी जाती है। काम पर कैसे विजय प्राप्त होती है यह सिखाया जाता है। यह शिक्षण देते हुए भी मनुष्य और पशु के बीच का भेद बताना आवश्यक हो जाता है। मनुष्य वह है जिसे हृदय और बुद्धि है। यह उसका यात्त्वर्थ है। हृदय को जागृत करने का अर्थ है—सारासार-विवेक सिखाना। यह सिखाते हुए काम पर विजय प्राप्त करना बताया जाता है।

तो अब इस शास्त्र की शिक्षा कौन दे ? जिस प्रकार खगोल-शास्त्र की शिक्षा वही दे सकता है जो उसमें पारगत हो, उसी तरह काम के जीतने का शास्त्र भी वही सिखा सकता है, जिसने काम पर विजय प्राप्त करली हो। उसकी भाषा मे संस्कारिता होगी, बल होगा, जीवन होगा। जिस उच्चारण के पीछे अनुभव ज्ञान नहीं है, वह जडवत् है, वह किसी को स्पर्श नहीं कर सकता। जिसको अनुभव-ज्ञान है, उसका कथन उगे बिना नहीं रह सकता।

आजकल हमारा बाह्याचार, हमारा वाचन, हमारा विचार-क्षेत्र सब काम की विजय सूचित कर रहे है। हमे उसके पाश से मुक्त होने का प्रयत्न करना है। यह काम अवश्य ही विकट है, मगर परवाह नही। अगर इने-गिने ही गुजराती हो, जिन्होने शिक्षण-शास्त्र का अनुभव प्राप्त किया हो और जो काम पर विजय प्राप्त करने के धर्म को मानते हो, उनकी श्रद्धा यदि अचल रहेगी, वे जागृत रहेगे और सतत प्रयत्न करते रहेगे तो गुजरात के बालक-बालिकाये शुद्ध ज्ञान प्राप्त करेगे और काम के जाल से मुक्ति प्राप्त करेगे और जो उसमे न फँसे होगे, वे बच जायँगे।

ह० से० २८-११-३६

: २७ :

एक अस्वाभाविक पिता

एक नवयुवक ने मुझे एक पत्र भेजा है, जिसका सार ही यहाँ दिया जा सकता है। वह निम्न प्रकार है:—

"मै एक विवाहित पुरुष हूँ। मै विदेश गया हुआ था। मेरा एक मित्र था, जिसपर मुझे और मेरे माँ-बाप को पूरा विश्वास था। अनुपस्थिति मे उसने मेरी पत्नी को फुसला लिया, जिससे अब वह गर्भवती भी हो गई है। अब मेरे पिता इस बात पर जोर देते है कि मेरी पत्नी गर्भ को गिरा दे, नही तो वह कहते है, खानदान की बदनामी होगी। मुझे ऐसा लगता है कि यह तो ठीक नही होगा। बेचारी स्त्री पश्चात्ताप के मारे मरी जा रही है। न तो

उसे खाने की सुध है, न पीने की। जब देखो तब रोती ही रहती है। क्या आप कृपा करके बतलायेंगे कि इस हालत मे मेरा क्या फर्ज है ?"

यह पत्र मैंने बड़ी हिचकिचाहट के साथ प्रकाशित किया है। जैसा कि हरेक जानता है, समाज में ऐसी घटनायें कभी-कदास ही नहीं होतीं। इसलिए सयम के साथ सार्वजनिक-रूप से इस प्रश्न की चर्चा करना मुझे असगत नहीं मालूम पड़ता।

मुझे तो दिन के प्रकाश की तरह यह स्पष्ट मालूम पड़ता है कि गर्भ गिराना जुर्म होगा। इस बेचारी स्त्री ने जो असावधानी की है, वैसी असावधानी तो अनगिनत पति करते हैं, लेकिन उनको कभी कोई कुछ नहीं कहता। समाज उन्हे माफ ही नहीं करता, बल्कि उनकी निन्दा भी नहीं करता। स्त्री तो अपनी शर्म को उस तरह छिपा भी नहीं सकती, जिस तरह कि पुरुष अपने पाप को सफलता के साथ छिपा सकता है।

यह स्त्री तो दया की पात्र है। पति का यह पवित्र कर्तव्य होगा कि वह अपने पिता की सलाह को न माने और बच्चे की परवरिश अपने भरसक पूरे लाड-प्यार से करे। वह अपनी पत्नी के साथ रहना जारी रक्खे या नहीं, यह एक टेढा सवाल है। परिस्थितियाँ ऐसी भी हो सकती हैं जिनके कारण उसे उससे अलग होना पडे, लेकिन उस हालत मे वह इस बात के लिए बाध्य होगा कि उसकी परवरिश तथा शिक्षा की व्यवस्था करे और शुद्ध जीवन व्यतीत करने मे उसकी मदद करे। अगर उसका

प्रायश्चित सच्चा और शुद्ध मनसे हो तो उसे ग्रहण करने मे भी मुझे कोई गलती नही मालूम पड़ती। यही नही; बल्कि मै तो ऐसी स्थिति की भी कल्पना कर सकता हूँ जब पत्नी के अपनी गलती के लिए पूरी तरह पश्चात्ताप करके उससे मुक्त हो जाने पर पति का यह पुनीत कर्तव्य होगा कि उसको फिर से ग्रहण करले।

यं० इं० ३-१-२६

: २८ :

एक त्याग

सन् १८६१ मे विलायत से लौटने के बाद मैने अपने परिवार के बच्चो को करीब-करीब अपनी निगरानी मे ले लिया, और उनके—बालक-बालिकाओ के—कंधो पर हाथ रखकर उनके साथ घूमने की आदत डाल ली। ये मेरे भाइयो के बच्चे थे। उनके बड़े हो जाने पर भी यह आदत जारी रही। ज्यो-ज्यो परिवार बढ़ता गया, त्यो-त्यो इस आदत की मात्रा इतनी बढी कि इसकी ओर लोगो का ध्यान आकर्पित होने लगा।

जहाँतक मुझे याद है, मुझे कभी यह पता नही चला कि मै इसमे कोई भूल कर रहा हूँ। कुछ वर्प हुए कि साबरमती मे एक आश्रमवासी ने मुझसे कहा था कि 'आप जब बड़ी-बड़ी उम्र की लड़कियो और स्त्रियो के कन्धो पर हाथ रखकर चलते है, तब इससे लोक-स्वीकृत सभ्यता के विचार को चोट पहुँचती मालूम

होती है।' किन्तु आश्रमवासियो के साथ चर्चा होने के बाद यह चीज जारी ही रही। अभी हाल मे मेरे दो साथी जब वर्धा आये तब उन्होने कहा कि 'आपकी यह आदत सम्भव है कि दूसरो के लिए एक बुरा उदाहरण बन जाय, इसलिए आपको यह बन्द कर देनी चाहिए।' उनकी यह दलील मुझे जँची नहीं। तो भी उन मित्रो की चेतावनी की मै अवहेलना नहीं करना चाहता था। इसलिए मैने पाँच आश्रमवासियो से इसकी जाँच करने और इसके सम्बन्ध मे सलाह देने के लिए कहा। इस पर विचार हो ही रहा था कि इस बीच मे एक निर्णयात्मक घटना घटी। मुझे किसी ने बतलाया कि यूनिवर्सिटी का एक तेज विद्यार्थी अकेले मे एक लडकी के साथ, जो उसके प्रभाव मे थी, सभी तरह की आजादी से काम लेता था, और दलील यह दिया करता था कि वह उस लडकी को सगी बहिन की तरह प्यार करता है, और इसीसे कुछ चेष्टाओ का प्रदर्शन किए बिना उससे रहा नहीं जाता। कोई उस पर अपवित्रता का जरा भी आरोपण करता तो वह नाराज हो जाता। वह नवयुवक क्या-क्या करता था उन सब बातो को अगर यहाँ लिखूँ तो पाठक बिना किसी हिचकिचाहट के कह देगे कि जिस आजादी से वह काम लेता था उसमे अवश्य ही गन्दी भावना थी। मैने और दूसरे जिन लोगो ने इस सम्बन्ध का पत्र-व्यवहार जब पढा तब हम इस नतीजे पर पहुँचे कि या तो वह युवक विद्यार्थी परले सिरे का बना हुआ आदमी है, या फिर खुद अपने-आपको धोखा दे रहा है।

चाहे जो हो, इस अनुसन्धान ने मुझे विचार मे डाल दिया। मुझे अपने उन दोनो साथियो की दी हुई चेतावनी याद आई और अपने दिल से पूछा कि अगर मुझे यह मालूम हो कि वह नवयुवक अपने बचाव मे मेरे व्यवहार की दलील दे रहा है तो मुझे कैसे लगे ? मै यहाँ यह बतला दूॅ कि वह लडकी, जो उस नवयुवक की चेष्टाओ का शिकार बन गई है, यद्यपि वह उसे बिल्कुल पवित्र और भाई के समान मानती है, तो भी वह उसकी उन चेष्टाओ को पसन्द नही करती, बल्कि वह आपत्ति भी करती है, पर उस बेचारी मे इतनी ताकत नही कि वह उस युवक की आपत्तिजनक चेष्टाओ को रोक सके। इस घटना के कारण मेरे मन मे जो आत्म-परीक्षण मंथन कर रहा था, उसका यह परिणाम हुआ कि उस पत्र-व्यवहार को पढ़ने के दो-तीन दिन के अन्दर मैने अपनी उपर्युक्त प्रथा का परित्याग कर दिया, और गत १२वी तारीख को मैने वर्धा के आश्रमवासियो को अपना यह निश्चय सुना दिया। यह बात नही कि यह निर्णय करते समय मुझे कष्ट न हुआ हो। इस व्यवहार के बीच या इसके कारण कभी कोई अपवित्र विचार मेरे मन मे नही आया। मेरा आचरण कभी छिपा हुआ नही रहा है। मै मानता हूॅ कि मेरा आचरण पिता के जैसा रहा है, और जिन अनेक लड़कियो का मै मार्ग-दर्शक और अभिभावक रहा हूॅ, उन्होने अपने मन की बाते इतने विश्वास के साथ मेरे सामने रक्खी कि जितने विश्वास के साथ वे शायद और किसी के सामने न रखती। यद्यपि ऐसे ब्रह्मचर्य मे मेरा विश्वास

नहीं, जिससे स्त्री-पुरुष का परस्पर स्पर्श बचाने के लिए एक रक्षा की दीवार बनाने की जरूरत पड़े, और जो ब्रह्मचर्य जरा से प्रलोभन के आगे भग हो जाय, तो भी जो स्वतन्त्रता मैंने ले रक्खी है, उसके खतरों से मैं अनजान नहीं हूँ।

इसलिए जिस अनुसन्धान का मैंने ऊपर जिक्र किया है, उसने मुझे अपनी यह आदत छोड़ देने के लिए सचेत कर दिया, फिर मेरा कन्धों पर हाथ रखकर चलने का व्यवहार चाहे जितना पवित्र रहा हो। मेरे हरेक आचरण को हजारों स्त्री-पुरुष खूब सूक्ष्मता से देखते हैं, क्योंकि मैं जो प्रयोग कर रहा हूँ, उसमे सतत जागरूक रहने की आवश्यकता है। मुझे ऐसे काम नहीं करने चाहिए जिनका बचाव मुझे दलीलों के सहारे करना पड़े। मेरे उदाहरण का कभी यह अर्थ नहीं था कि उसका चाहे जो अनुसरण करने लग जायँ। इस नवयुवक का मामला बतौर एक चेतावनी के मेरे सामने आया और उससे मैं आगाह हो गया। मैंने इस आशा से यह निश्चय किया है कि मेरा यह त्याग उन लोगों को सही रास्ता पकड़ा देगा, जिन्होंने या तो मेरे उदाहरण से प्रभावित होकर गलती की है या यों ही। निर्दोष युवावस्था एक अनमोल निधि है। क्षणिक उत्तेजना के पीछे जिसे गलती से 'आनन्द' कहते है, इस निधि को यों ही बरबाद नहीं कर देना चाहिए। और इस चित्र मे चित्रित लड़की के समान कमजोर मनवाली लड़कियों मे इतना बल तो होना ही चाहिए कि वे उन बदमाश या अपने कामों से अनजान नवयुवकों की हरकतों का—

फिर वे उन्हें चाहे जितना निर्दोष जतलावें--साहस के साथ सामना कर सकें।

ह० से० २७-६-३५

:२९:

अहिंसा और ब्रह्मचर्य

एक कॉंग्रेस-नेता ने बातचीत के सिलसिले में उस दिन मुझ से कहा—"यह क्या बात है कि कॉंग्रेस अब नैतिकता की दृष्टि से वैसी नहीं रही जैसी कि वह १९२० से १९२५ तक थी? तब से तो इसकी बहुत नैतिक अवनति हो गई है। अब तो इसके नब्बे फीसदी सदस्य कॉंग्रेस के अनुशासन का पालन नहीं करते। क्या आप इस हालत को सुधारने के लिए कुछ नहीं कर सकते?"

यह प्रश्न उपयुक्त और सामयिक है। मैं यह कह कर अपनी जिम्मेदारी से हट नहीं सकता कि अब मैं कॉंग्रेस में नहीं हूँ। मैं तो और अच्छी तरह इसकी सेवा करने के लिए ही इससे बाहर हुआ हूँ। कॉंग्रेस की नीति पर अब भी मैं अपना प्रभाव डाल रहा हूँ, यह मैं जानता हूँ। और १९२० में कॉंग्रेस का जो विधान बना था, उसे बनाने वाले की हैसियत से उस गिरावट के लिए मुझे अपने को जिम्मेदार मानना ही चाहिए, जिससे कि बचा जा सकता है।

कॉंग्रेस ने आरम्भिक कठिनाइयों के बीच सन् १९२० में काम शुरू किया था। सत्य और अहिंसा पर बतौर ध्येय के बहुत

कम लोग विश्वास करते थे। अधिकाँश सदस्यों ने इन्हें नीति के तौर पर ही स्वीकार किया। वह अनिवार्य था। मैंने आशा की थी कि नई नीति से कॉग्रेस को काम करते हुए देखकर उन मे से अनेक इन्हें अपने ध्येय के रूप मे स्वीकार कर लेंगे, लेकिन ऐसा कुछ ही लोगों ने किया, बहुतों ने नहीं। शुरूआत मे तो सब से बडे नेताओं में भारी परिवर्त्तन देखने मे आया। स्वर्गीय पडित मोतीलाल नेहरू और देशबन्धुदास के जो पत्र 'यग इडिया' मे उद्धृत किये गये थे, उन्हें पाठक भूले नहीं होंगे। सयम, सादगी और अपने आप को कुर्बान कर देने के जीवन मे उन्हें एक नये आनन्द और एक नई आशा का अनुभव हुआ था। अलीबन्धु तो करीब-करीब फकीर ही बन गये थे। जगह-जगह दौरा करते हुए, इन भाइयों मे होने वाली तब्दीली को मैं आनन्द के साथ देखता था। और जो बात इन चार नेताओं के विषय मे सच है, वही और भी ऐसे बहुतो के बारे मे कही जा सकती है, जिनके कि मै नाम गिना सकता हूँ। इन नेताओं के उत्साह का आम लोगों पर भी असर पडा।

लेकिन यह प्रत्यक्ष परिवर्त्तन 'एक साल मे स्वराज' के आकर्षण की वजह से था। इसकी पूर्त्ति के लिए मैंने जो शर्त्तें लगाई थीं, उन पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। ख्वाजा अब्दुलमजीद साहब ने तो यहाँ तक कह डाला कि सत्याग्रह-सेना के, जैसी कि कॉग्रेस उस समय बन गई थी और अभी भी है, (यदि कॉग्रेस-वादी सत्याग्रह के अर्थ को महसूस करे) सेनापति की हैसियत

से मुझे इस बात का निश्चय कर लेना चाहिए था कि मै जो शर्त्तें लगा रहा हूॅ, वे ऐसी है जो पूरी हो जायॅगी। शायद उनका कहना ठीक ही था। सिर्फ वह ज्ञानचक्षु मेरे पास नही था। सामूहिक रूप मे और राजनैतिक उद्देश्य से अहिसा का उपयोग खुद मेरे लिए भी एक प्रयोग ही था। इसलिए मै गर्व-पूर्वक कोई दावा नही कर सकता था। मेरी शर्त्तों का यह उद्देश्य था कि जिससे लोगो की शक्ति का अन्दाज लग सके। वे पूरी हो भी सकती थी और नही भी हो सकती थी। गलतियो, या गलत अन्दाजो की तो सदा ही सम्भावना थी। जो भी हो, जब स्वराज की लडाई लम्बी हो गई और खिलाफत के सवाल मे जान न रही तो लोगो का उत्साह मन्द पड़ने लगा। अहिसा मे नीति के तौर पर भी विश्वास ढीला पड़ने लगा और असत्य का प्रवेश हो गया। जिन लोगो का इन दोनो गुणो मे या खद्दर की शर्त्त मे कोई विश्वास नही था, वे इसमे घुस आये, और बहुतो ने तो खुले आम भी कॉग्रेस-विधान की अवहेलना करना शुरू कर दिया।

यह बुराई बराबर बढ़ती ही गई। वर्किंग-कमेटी कॉग्रेस को इस बुराई से मुक्त करने का कुछ प्रयत्न करती रही है, लेकिन दृढता-पूर्वक नही, और न वह कॉग्रेस के सदस्यो की संख्या कम हो जाने के खतरे को उठाने के लिये तैयार हो सकी है। मै खुद तो सख्या के बजाय गुण मे ही ज्यादा विश्वास करता हूॅ।

लेकिन अहिसा की योजना मे जबर्दस्ती का कोई काम नही है। उसमे तो इसी बात पर निर्भर रहना पड़ता है कि लोगो की बुद्धि

और हृदय तक—उसमे भी बुद्धि की अपेक्षा हृदय पर ही ज्यादा—पहुँचने की क्षमता प्राप्त की जाय।

इसका यह अभिप्राय हुआ कि सत्याग्रह-सेनापति के शब्द मे ताकत होनी चाहिए—वह ताक़त नहीं जो असीमित अस्त्र-शस्त्रो से प्राप्त होती है बल्कि वह जो जीवन की शुद्धता, दृढ जागरूकता और सतत आचरण से प्राप्त होती है। यह ब्रह्मचर्य का पालन किये बगैर असम्भव है। इसका इतना सम्पूर्ण होना आवश्यक है, जितना कि मनुष्य के लिए सम्भव है। ब्रह्मचर्य का अर्थ यहाँ खाली दैहिक आत्म-सयम या निग्रह ही नहीं है। इसका तो इससे कहीं अधिक अर्थ है। इसका मतलब है सभी इद्रियो पर पूर्ण नियमन। इस प्रकार अशुद्ध विचार भी ब्रह्मचर्य का भग है। और यही हाल क्रोध का है। सारी शक्ति उस वीर्य-शक्ति की रक्षा और ऊर्ध्वगति से प्राप्त होती है, जिससे कि जीवन का निर्माण होता है। अगर इस वीर्य-शक्ति को, नष्ट होने देने के बजाय, सचय किया जाय, तो यह सर्वोत्तम सृजन-शक्ति के रूप मे परिणत हो जाती है। बुरे या अस्त-व्यस्त, अव्यवस्थित, अवांछनीय विचारो से भी इस शक्ति का बराबर और अज्ञात रूप से भी क्षय होता रहता है और चूकि विचार ही सारी वाणी और क्रियाओ का मूल होता है, इसलिये वे भी इसीका अनुसरण करती हैं। इसीलिए, पूर्णत नियत्रित विचार खुद ही सर्वोच्च प्रकार की शक्ति है। और स्वत क्रियाशील बन सकता है। मूकरूप मे की जाने वाली हार्दिक प्रार्थना का मुझे तो यही अर्थ मालूम पडता है। अगर मनुष्य ईश्वर

की मूर्ति का उपासक है, तो उसे अपने मर्यादित क्षेत्र के अन्दर किसी बात की इच्छा भर करने की देर है। जैसा वह चाहता है वैसा ही वह बन जाता है। जिस तरह चूने वाले नल मे भाप रखने से कोई शक्ति पैदा नही होती, उसी प्रकार जो अपनी शक्ति का किसी भी रूप मे क्षय होने देता है उसमे इस शक्ति का होना असम्भव है। प्रजोत्पत्ति के निश्चित उद्देश्य से न किया जाने वाला काम-सम्बन्ध इस शक्ति-क्षय का एक बहुत बडा नमूना है, इसलिए उसकी खास तौर से जो निन्दा की गई है, वह ठीक ही है, लेकिन जिसे अहिंसात्मक कार्य के लिए मनुष्य जाति के विशाल समूहो को सगठित करना है, उसे तो, इन्द्रियो के जिस पूर्ण निग्रह का मैने ऊपर वर्णन किया है, उसको प्रयत्नपूर्वक प्राप्त करना ही चाहिए।

ईश्वर की कृपा के बगैर यह सम्पूर्ण इन्द्रिय-निग्रह सम्भव नहीं है। गीता के दूसरे अध्याय मे एक श्लोक है—

"विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिना,
रसवर्ज रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।"

अर्थात् जब तक उपवास किये जाते है, तब तक इन्द्रियाँ विषयो की ओर नही दौड़ती, पर अकेले उपवास से रस सूख नही जाते। उपवास छोडते ही वे और बढ़ भी सकते है। इसको वश मे करने के लिए तो ईश्वर का प्रसाद आवश्यक है। यह नियमन यॉत्रिक या अस्थायी नही है। एक बार प्राप्त हो जाने के बाद यह कभी नष्ट नही होता। उस हालत मे वीर्य-शक्ति इस

तरह सुरक्षित रहती है कि अगणित रास्तों में से किसी में होकर उसके निकलने की सम्भावना ही नहीं रहती।

कहा गया है कि ऐसा ब्रह्मचर्य यदि किसी तरह प्राप्त किया जा सकता हो तो कन्दराओं में रहने वाले ही कर सकते होंगे। ब्रह्मचारी को तो, कहते हैं, स्त्रियों का स्पर्श तो क्या, उनका दर्शन भी कभी न करना चाहिए। निस्सन्देह, किसी ब्रह्मचारी को काम-वासना से किसी स्त्री को न तो छूना चाहिए, न देखना चाहिए और न उसके विषय में कुछ कहना या सोचना ही चाहिए, लेकिन ब्रह्मचर्य विषयक पुस्तकों में हमें यह जो वर्णन मिलता है उसमें इसके महत्व-पूर्ण अव्यय 'कामवासना पूर्वक' का उल्लेख नहीं मिलता। इस छूट की वजह यह मालूम पडती है कि ऐसे मामलों में मनुष्य निष्पक्ष-रूप से निर्णय नहीं कर सकता और इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि कब तो उस पर ऐसे सम्पर्क का असर पडा और कब नहीं। काम-विकार अक्सर अनजाने ही उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिए दुनिया में आजादी से सबके साथ हिलने-मिलने पर ब्रह्मचर्य का पालन यद्यपि कठिन है, लेकिन अगर संसार से नाता तोड लेने पर ही यह प्राप्त हो सकता हो तो उसका कोई विशेष मूल्य ही नहीं है।

जैसे भी हो, मैंने तो तीस वर्ष से भी अधिक समय से प्रवृत्तियों के बीच रहते हुए ब्रह्मचर्य का खासी सफलता के साथ पालन किया है। ब्रह्मचर्य का जीवन बिताने का निश्चय कर लेने के बाद, अपनी पत्नी के साथ व्यवहार

को छोड़कर, मेरे बाह्य आचरण मे कोई अन्तर नही पडा। दक्षिण अफ्रिका मे भारतीयो के बीच मुझे जो काम करना पड़ा, उसमे मै स्त्रियो के साथ आजादी के साथ हिलता-मिलता था। ट्रॉसवाल और नेटाल मे शायद ही कोई ऐसी भारतीय स्त्री हो जिसे मै न जानता होऊँ। मेरे लिए तो इतनी सारी बहने और बेटियॉ ही थीं। मेरा ब्रह्मचर्य पुस्तकीय नही है। मैने तो अपने तथा उन लोगो के लिए, जोकि मेरे कहने पर इस प्रयोग मे शामिल हुए है, अपने ही नियम बनाये है और अगर मैने इसके लिए निर्दिष्ट निषेधो का अनुसरण नही किया है, तो धार्मिक साहित्य तक मे स्त्रियो को जो सारी बुराई और प्रलोभन का द्वार बताया गया है, उसे मै इतना भी नही मानता। मै तो ऐसा मानता हूँ कि मुझमे जो भी अच्छाई हो वह सब मेरी मॉ की बदौलत है। इसलिए स्त्रियो को मैने कभी इस तरह नही देखा कि कामवासना की तृप्ति के लिए ही वे बनाई गई है, बल्कि हमेशा उसी श्रद्धा के साथ देखा है जो कि मै अपनी माता के प्रति रखता हूँ। पुरुष ही प्रलोभन देने वाला और आक्रमण करने वाला है। स्त्री के स्पर्श से वह अपवित्र नही होता, बल्कि अक्सर वह खुद ही उसका स्पर्श करने लायक़ पवित्र नही होता। लेकिन हाल मे मेरे मन मे सन्देह जरूर उठा है कि स्त्री या पुरुष के सम्पर्क मे आने के लिए ब्रह्मचारी या ब्रह्मचारिणी को किस तरह की मर्यादाओ का पालन करना चाहिए। मैने जो मर्यादाये रक्खी है वे मुझे पर्याप्त नही मालूम पडती, लेकिन वे क्या होनी चाहिए, यह मै नही जानता। मै तो प्रयोग

कर रहा हूँ। इस बात का मैंने कभी दावा नहीं किया कि मैं अपनी परिभाषा के अनुसार पूर्ण ब्रह्मचारी बन गया हूँ। अब भी मैं अपने विचारों पर उतना नियंत्रण नहीं रख सकता हूँ जितने नियंत्रण की अपनी अहिंसा की शोधों के लिए मुझे आवश्यकता है, लेकिन अगर मेरी अहिंसा ऐसी हो जिसका दूसरों पर असर पड़े और वह उनमें फैले, तो मुझे अपने विचारों पर और अधिक नियंत्रण करना ही चाहिए। इस लेख के प्रारम्भिक वाक्य में नेतृत्व की जिस प्रत्यक्ष असफलता का उल्लेख किया गया है, उसका कारण शायद कहीं-न-कहीं किसी कमी का रह जाना ही है।

अहिंसा में मेरा विश्वास हमेशा की तरह दृढ है। मुझे इस बात का पूरा विश्वास है कि इससे न केवल हमारे देश की ही सारी आवश्यकताओं की पूर्त्ति होनी चाहिए, बल्कि अगर ठीक तरह से इसका पालन किया जाय तो यह उस खूनखराबी को भी रोक सकती है, जो हिन्दुस्तान के बाहर हो रही है और सारे पश्चिमी संसार में जिसके व्याप्त हो जाने का अन्देशा है।

मेरी आकाँक्षा तो मर्यादित है। परमेश्वर ने मुझे इतनी शक्ति नहीं दी है, जो अहिंसा के पथ पर सारी दुनिया की रहनुमाई करूं, लेकिन मैंने यह कल्पना जरूर की है कि हिन्दुस्तान की अनेक खराबियों के निवारणार्थ अहिंसा का प्रयोग करने के लिए उसने मुझे अपना औजार बनाया है। इस दिशा में अभी तक जो प्रगति हो चुकी है, वह महान् है, लेकिन अभी बहुत-कुछ करना

बाकी है। इतने पर भी मुझे ऐसा लगता है कि इसके लिए आम-तौर पर कॉंग्रेसवादियो की जो सहानुभूति आवश्यक है उसे उकसाने की शक्ति मुझ मे नही रही है। जो अपने औजारो को ही बुरा बतलाता रहता है वह कोई अच्छा बढई नही है। यह तो 'नाच न आवे, ऑगन टेढा' की मसल होगी। इसी तरह बिगडे हुए कामो के लिए अपने आदमियो को दोप देने वाला सेनापति भी अच्छा नही कहा जा सकता, पर मै यह जानता हूॅ कि मै बुरा सेनापति नही हूॅ। अपनी मर्यादाओ को जानने की जितनी बुद्धि मुझमे मौजूद है अगर कभी उसका मेरे अन्दर दिवाला निकल जाय तो ईश्वर मुझे इतनी शक्ति देगा कि मै उसकी स्पष्ट घोपणा कर दूॅगा।

उसकी कृपा से मै कोई आधी सदी से जो काम कर रहा हूॅ अगर उसके लिए मेरी और जरूरत न रही, तो शायद वह मुझे उठा लेगा, लेकिन मेरा खयाल है कि मेरे करने को अभी काफी काम है। जो अन्धकार मेरे ऊपर छा गया मालूम पड़ता है, वह नष्ट हो जायगा, और स्पष्टतया अहिंसात्मक साधनो से भारत अपने लक्ष्य को पहुॅच जायगा—फिर इसके लिए चाहे डॉडी-कूच से भी ज्यादा उग्र लडाई लडनी पडे या उसके बगैर ही ऐसा हो जाय। मै ईश्वर से उस प्रकाश की याचना कर रहा हूॅ जो अन्धकार का नाश कर देगा। अहिंसा मे जिनकी जीवित श्रद्धा हो उन्हे इसमे मेरा साथ देना चाहिए।

ह० से० २३-७-३८

: ३० :

उसकी कृपा बिना कुछ नहीं

डाक्टरो और अपने-आप जेलर बनने वाले सरदार वल्लभभाई तथा जमनालाल जी की कृपा से मै फिर पाठको के सम्पर्क मे आने के काबिल हो गया हूँ, हालाँकि है यह परीक्षण के तौर पर और एक निश्चित सीमा तक ही। इन लोगो ने मेरी स्वतत्रता पर यह बन्धन लगा दिया है और मैने उसे स्वीकार भी कर लिया है कि फिलहाल मै 'हरिजन' मे उससे अधिक किसी हालत मे नही लिखूँगा जोकि मुझे बहुत जरूरी मालूम पडे, और वह भी इतना ही कि जिसके लिखने मे प्रति सप्ताह कुछ घंटे से अधिक समय न लगे। सिवा उनके कि जिनके साथ मैने अभी से लिखा-पढी शुरू कर दी है, और किसी की निजी समस्याओ या घरेलू कठिनाइयो के बारे मे मै निजी पत्र-व्यवहार नही करूँगा, और न तो मै किसी सार्वजनिक कार्यक्रम को स्वीकार करूँगा, न किसी सार्वजनिक सभा मे भाषण दूगा या उपस्थित ही होऊँगा। सोने, दिल-बहलाव, मिहनत और भोजन के बारे मे भी निश्चित रूप से निर्देश कर दिये गये है, लेकिन उनके वर्णन की कोई जरूरत नही, क्योकि उनसे पाठको का कोई सम्बन्ध नही है। मुझे आशा है कि इन हिदायतो का पालन करने मे 'हरिजन' के पाठक तथा सवाद-दाता लोग मेरे और महादेव भाई के साथ, जिनके जिम्मे सब पत्र-व्यवहार को भुगताने का काम होगा, पूरा सहयोग करेगे।

मेरी वीमारी के मूल और उसके लिए किये जाने वाले उपायो की कुछ वात पाठको के लिए अवश्य रुचिकर होगी। जहाँतक मैंने अपने डाक्टरो को समझा है, मेरे शरीर का वहुत सावधानी और सिरदर्दी के साथ निरीक्षण करने पर भी उन्हे मेरे शारीरिक अवयवो मे कोई खरावी नही मिली। उनकी राय मे वहुत सम्भवत 'प्रोटीन' और 'कारवोहाइड्रेट्स' कीक मी, जोकि शक्कर और निशास्ते के द्वारा प्राप्त होती है, और वहुत दिनो से अपने रोजमर्रा के सार्वजनिक काम-काज के अलावा लगातार लम्वे-लम्वे समय तक परेशान कर देने वाली विविध निजी समस्याओ मे उलझे रहने से यह वीमारी हुई थी। जहाँतक मुझे याद पड़ता है, पिछले वारह महीने या इससे भी अधिक समय से मै इस वात को वरावर कहता आ रहा था कि लगातार वढ़ते जानेवाले काम की तादाद मे अगर कमी न हुई तो मेरा वीमार पड़ जाना निश्चित है। इसलिए, जब वीमारी आई, तो मेरे लिए वह नई वात नहीं थी। और वहुत सम्भव है कि दुनिया मे इसका इतना ढिंढोरा ही न पिटता, अगर एक मित्र की जरूरत से ज्यादा चिन्ता सामने न आती, जिन्होने कि मेरे स्वास्थ्य को गिरता देख कर जमनालालजी को सनसनीदार रुक्का भेज दिया। वस, जमनालालजी ने यह खवर पाते ही उन सव होशियार डाक्टरो को वुला लिया जोकि वर्धा मे मिल सकते थे, और विशेष सहायता के लिए नागपुर व वम्वई भी खवर भेज दी।

जिस दिन मै वीमार पड़ा, उस दिन सवेरे ही मुझे उसकी

चेतावनी मिल गई थी। जैसे ही मैं सोकर उठा, मुझे अपनी गर्दन के पास एक खास तरह का दर्द मालूम पड़ा, लेकिन मैंने उसपर ज्यादा ध्यान नहीं दिया और किसीसे कुछ नहीं कहा। दिन-भर में अपना काम करता रहा। शाम की हवाखोरी के वक्त जब मैं एक मित्र के साथ बातें कर रहा था तो मुझे बहुत थकावट मालूम पड़ने लगी और मैं बहुत गम्भीर हो गया। मेरे स्नायु इससे पहले पखवाड़े में ऐसी समस्याओं के सोच-विचार में पहले ही काफी ढीले पड़ चुके थे, जो कि मेरे लिए मानों स्वराज्य के सर्व-प्रधान प्रश्न की ही तरह महत्वपूर्ण थीं।

मेरी बीमारी को अगर इतना तूल न दिया गया होता तो भी जो निश्चित चेतावनी प्रकृति मुझे दे रही थी, उसपर मुझे ध्यान देना पड़ता और मैंने अपने को थोड़ा आराम देकर उस कठिनाई को हल करने की कोशिश की होती, लेकिन जो कुछ हो गया उसपर नज़र डालने से मुझे ऐसा मालूम पड़ता है कि जो कुछ हुआ वह ठीक ही हुआ। डाक्टरों ने जो असाधारण सावधानी रखने की सलाह दी और उन्हीं के समान असाधारण रूप से उक्त दोनों जेलरों ने जो देख-भाल रक्खी उसके कारण मजबूरन मुझे आराम करना पड़ा, जो वैसे मैं कभी न करता, और उससे मुझे आत्म-निरीक्षण का काफी समय मिल गया। इसलिए इससे मुझे स्वास्थ्य का लाभ ही नहीं हुआ, बल्कि आत्म-निरीक्षण से मुझे यह भी मालूम हुआ कि गीता का जो अर्थ मैं समझा हूँ उसका पालन करने में मैं कितनी गलती कर रहा हूँ। मुझे पता लगा कि

जो विविध समस्याये हमारे सामने उपस्थित है, उनकी काफी गह-राई मे मै नही पहुँचा हूँ। यह स्पष्ट है कि उनमे से अनेक ने मेरे हृदय पर असर डाला है और मैने उन्हे, अपनी भावुकता को प्रेरित करके, अपने स्नायुओ पर जोर डालने दिया है। दूसरे शब्दो मे कहूँ तो गीता के भक्त को उनके प्रति जैसा अनासक्त रहना चाहिए वैसा मेरा मन या शरीर नही रहा है। सचमुच मेरा यह विश्वास है कि जो व्यक्ति प्रकृति के आदेश का पूर्णत अनुसरण करता है उसके मन मे बुढापे का भाव कभी आना ही नही चाहिए। ऐसा व्यक्ति तो अपने मन मे अपने को सदा तरोताजा और नौजवान ही महसूस करेगा और जब उसके मरने का समय आयगा तो उसी तरह मरेगा जैसे किसी मजबूत वृक्ष के पत्ते गिरते हो। भीष्म पितामह ने मृत्यु-शैया पर पड़े हुए भी युधिष्ठिर को जो उपदेश दिया, मेरी समझ मे, उसका यही अर्थ है। डाक्टर लोग मुझे यह चेतावनी देते कभी नही थकते थे कि हमारे आस-पास जो घटनाये हो रही है, उनसे मुझे उत्तेजित हर्गिज नही होना चाहिए। कोई दु खद या उत्तेजक घटना अथवा समाचार मेरे सामने न आये, इसकी भी खासतौर पर सावधानी रक्खी गई। यद्यपि मेरा खयाल है कि मै गीता का उतना बुरा अनुयायी नही हूँ, जैसाकि इस सावधानी की कार्रवाई से मालूम पड़ता है, लेकिन इसमे सन्देह नही कि उनकी हिदायतो मे सार अवश्य था, क्योकि मगनवाड़ी से महिलाश्रम जाने की जमना-लाल जी की बात मैने कितनी अनिच्छा से कबूल की, यह मुझे

मालूम है। जो भी हो, उन्हे यह विश्वास नहीं रहा कि अनासक्त रूप से मै कोई काम कर सकता हूँ। मेरा वीमार पड जाना उनके लिए इस बात का वडा भारी प्रमाण था कि अनासक्ति की मेरी जो ख्याति है, वह थोथी है, और इसमे मुझे अपना दोप स्वीकार करना ही पडेगा।

लेकिन अभी तो इससे भी अधिक वुरा होने को वाकी था। १८९९ से मै, जान-बूझ कर और निश्चय के साथ, वरावर ब्रह्मचर्य का पालन करने की कोशिश करता रहा हूँ। मेरी व्याख्या के अनुसार, इसमे न केवल शरीर की, वल्कि मन और वचन की शुद्धता भी शामिल है। और सिवा उस अपवाद के, जिसे कि मानसिक स्खलन कहना चाहिए, अपने ३६ वर्ष से अधिक समय के सतत एव जागरूक प्रयत्न के वीच, मुझे याद नही पडता कि कभी भी मेरे मन मे इस सम्बन्ध मे ऐसी वेचैनी पैदा हुई हो, जैसी कि इस वीमारी के समय मुझे महसूस हुई। यहाँतक कि मुझे अपने से निराशा होने लगी, लेकिन जैसे ही मेरे मन मे ऐसी भावना उठी, मैंने अपने परिचारको और डाक्टरो को उससे अवगत कर दिया, लेकिन वे मेरी कोई मदद नही कर सके। मैंने उनसे आशा भी नही की थी। अलवत्ता इस अनुभव के वाद मैंने उस आराम मे ढिलाई कर दी, जोकि मुझपर लादा गया था। और अपने इस वुरे अनुभव को स्वीकार कर लेने से मुझे वडी मदद मिली। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानो मेरे ऊपर से वडा भारी वोझ हट गया और कोई हानि हो सकने से पहले ही मै

सम्हल गया, लेकिन गीता का उपदेश तो स्पष्ट और निश्चित है। जिसका मन एक वार ईश्वर मे लग जाय वह कोई पाप नहीं कर सकता। मै उससे कितना दूर हूँ, यह तो वही जानता है। ईश्वर को धन्यवाद है कि अपने महात्मापन की प्रसिद्धि से मै कभी धोखे मे नहीं पड़ा हूँ, लेकिन इस जवर्दस्ती के विश्राम ने तो मुझे इतना विनम्र वना दिया है, जितना मै पहले कभी नहीं था। इससे अपनी मर्यादाए और अपूर्णताए भली-भॉति मेरे सामने आ गई है, लेकिन उनके लिए मै उतना लज्जित नहीं हूँ जितना कि सर्व-साधारण से उनको छिपाने मे होता। गीता के सन्देश मे सदा की तरह आज भी मेरा वैसा ही विश्वास है। उस विश्वास को ऐसे सुन्दर रूप मे परिणत करने के लिए कि जिससे गिरावट का अनुभव ही न हो, लगातार अथक प्रयत्न की आवश्यकता है, लेकिन उसी गीता मे साथ-साथ असदिग्ध रूप से यह भी कहा हुआ है कि ईश्वरीय अनुग्रह के विना वह स्थिति ही प्राप्त नहीं हो सकती। अगर विधाता ने इतनी गुंजाइश न रक्खी होती तो हमारे हाथ-पैर ही फूल गये होते और हम अकर्मण्य होगये होते।

ह० से० २६-२-३६

: ३१ :

विद्यार्थियों के लिए लज्जाजनक

पंजाव के एक कालेज की लडकी का एक अत्यन्त हृदयस्पर्शी पत्र करीवन दो महीने से मेरी फायल मे पड़ा हुआ है। इस लड़की

के प्रश्न का जवाव जो अभी तक नहीं दिया इसमे समय के अभाव का तो केवल एक वहाना था। किसी न-किसी तरह इस काम से अपने को मै वचा रहा था, हालॉकि मै यह जानता था कि इस प्रश्न का क्या जवाव देना चाहिए। इस वीच मे मुझे एक और पत्र मिला। यह पत्र एक ऐसी वहन का लिखा हुआ है, जो वहुत अनुभव रखती है। मुझे ऐसा महसूस हुआ कि कालेज की इस लडकी की जो यह वहुत वास्तविक कठिनाई है, उसका मुकावला करना मेरा कर्त्तव्य है, और इसकी अव मै और अधिक दिनो तक उपेक्षा नही कर सकता। पत्र उसने शुद्ध हिन्दुस्तानी मे लिखा है, जिसका एक भाग मै नीचे उद्धृत कर रहा हूँ —

"लडकियो और वयस्क स्त्रियो के सामने, उनकी इच्छा के विरुद्ध, ऐसे अवसर आ जाया करते है, जवकि उन्हे अकेली जाने की हिम्मत करनी पडती है—या तो उन्हे एक ही शहर मे एक जगह से दूसरी जगह जाना होता है या एक शहर से दूसरे शहर को। और जव वे इस तरह अकेली होती है, तव गन्दी मनोवृत्तिवाले लोग उन्हे तग किया करते है। वे उस वक्त अनुचित और अश्लील भाषा तक का उपयोग करते है। और अगर भय उन्हे रोकता नही है, तो इससे भी आगे वढने मे उन्हे कोई हिचकिचाहट नहीं होती। मै यह जानना चाहती हूँ कि ऐसे मौक़ो पर अहिसा क्या काम दे सकती है? हिसा का उपयोग तो है ही। अगर किसी लडकी या स्त्री मे काफी हिम्मत हो तो उस के पास जो भी साधन होगे उन्हे वह काम मे लायगी और एक वार

बदमाशों को सबक सिखा देगी। वे कम-से-कम हंगामा तो मचा सकती है जिससे कि लोगों का ध्यान आकर्षित हो जाये और गुण्डे वहाँ से भाग जाये। लेकिन मै यह जानती हूँ कि इसके परिणाम-स्वरूप विपत्ति सिर्फ टल जायगी, यह कोई स्थायी इलाज नही है। अशिष्ट व्यवहार करनेवाले लोगों का अगर आपको पता है तो मुझे विश्वास है कि उन्हे अगर समझाया जाय, तो वे आपकी प्रेम और नम्रता की बाते सुनेगे। पर उस आदमी के लिए आप क्या कहेगे, जो साईकिल पर चढा हुआ किसी लडकी या स्त्री को देखकर, जिसके साथ कि कोई मर्द साथी नहीं है, गंदी भाषा का प्रयोग करता है ? उसे दलील देकर समझाने का आपको मौका नहीं है। आपके उससे फिर मिलने की कोई सम्भावना नही। हो सकता है आप उसे पहचाने भी नहीं। आप उसका पता भी नहीं जानते। ऐसी परिस्थिति मे वह बेचारी लडकी या स्त्री क्या करे ? मै अपना ही उदाहरण देकर आपको अपना अनुभव बताती हूँ। २६ अक्तूबर की रात की बात है। मै अपनी एक सहेली के साथ ७-३० बजे के करीब एक ख़ास काम से जा रही थी। उस वक़्त किसी मर्द साथी को साथ ले जाना नामुमकिन था, और काम इतना जरूरी था कि टाला नही जा सकता था। रास्ते मे, एक सिक्ख युवक साईकिल पर जा रहा था। वह कुछ गुनगुनाता जाता था। जबतक कि हम सुन सके उसने गुनगुनाना जारी रक्खा। हमे यह मालूम था कि वह हमे लक्ष करके ही गुनगुना रहा है। हमे उसकी यह हरकत बहुत नागवार मालूम हुई। सडक

पर कोई चहल-पहल नहीं थी। हमारे चन्द कदम जाने से पहले वह लौट पड़ा। हम उसे फौरन पहचान गए, हालाँकि वह अब भी हमसे खासे फासले पर था। उसने हमारी तरफ साइकिल घुमाई। ईश्वर जाने, उसका इरादा उतरने का था या यूं ही हमारे पास से सिर्फ गुजरने का। हमें ऐसा लगा कि हम खतरे में हैं। हमें अपनी शारीरिक बहादुरी में विश्वास नहीं था। मैं एक औसत लड़की के मुकाबले शरीर में कमजोर हूँ, लेकिन मेरे हाथ में एक बड़ी-सी किताब थी। यकायक किसी तरह मेरे अन्दर हिम्मत आगई। साईकिल की तरफ मैंने उस किताब को जोर से मारा, और चिल्लाकर कहा, "चुहलबाजी करने की तू फिर हिम्मत करेगा ?" वह मुश्किल से अपने को सभाल सका, और साईकिल की रफ्तार बढ़ाकर वहाँ से रफूचक्कर होगया। अब अगर मैंने उसकी साईकिल की तरफ किताब जोर से न मारी होती, तो वह अन्त तक इसी तरह अपनी गन्दी भाषा से हमें तग करता जाता। यह तो एक मामूली, बल्कि नगण्य-सी घटना है, पर मैं चाहती हूँ कि आप लाहौर आते और हम हत-भागिनी लड़कियों की मुसीबतों की दास्तान खुद अपने कानों सुनते। आप निश्चय ही इस समस्या का ठीक-ठीक हल ढूंढ सकते हैं। सबसे पहले आप मुझे यह बतायें कि ऊपर जिन परिस्थितियों का मैंने वर्णन किया है उनमें लड़कियाँ अहिंसा के सिद्धान्त का प्रयोग किस तरह कर सकती हैं, और कैसे अपने आप को बचा सकती हैं ? दूसरे स्त्रियों को अपमानित करने की

जिन युवकों को यह बहुत बुरी आदत पड़ गई है, उनको सुधारने का क्या उपाय है ? आप यह उपाय न सुझाइएगा कि हमें उस नई पीढी के आने तक इन्तजार करना चाहिए और तबतक हम इस अपमान को चुपचाप बर्दाश्त करती रहें, जिस पीढी ने कि बचपन से ही स्त्रियों के साथ भद्रोचित व्यवहार करने की शिक्षा पाई होगी। सरकार की या तो इस सामाजिक बुराई का मुकाबिला करने की इच्छा नहीं या ऐसा करने में वह असमर्थ है। और हमारे बड़े-बड़े नेताओं के पास ऐसे प्रश्नों के लिए वक्त नहीं। कुछ जब यह सुनते हैं कि किसी लड़की ने अशिष्टता से पेश आने वाले नवयुवकों की अच्छी तरह से मरम्मत कर दी है, तो कहते हैं, "शाबाश, ऐसा ही सब लड़कियों को करना चाहिए।" कभी-कभी किसी नेता को हम विद्यार्थियों के ऐसे दुर्व्यवहार के खिलाफ छटादार भाषण करते हुए पाते हैं, मगर ऐसा कोई नजर नहीं आता, जो इस गम्भीर समस्या का हल निकालने में निरन्तर प्रयत्नशील हो। आपको यह जानकर कष्ट और आश्चर्य होगा कि दीवाली और ऐसे ही दूसरे त्यौहारों पर अखबारों में इस किस्म की चेतावनी की नोटिसें निकला करती हैं कि रोशनी देखने तक के लिए औरतों को घरों से बाहर नहीं निकलना चाहिए। इसी तरह एक बात से आप जान सकते हैं कि दुनिया के इस हिस्से में हम किस कदर मुसीबतों में फसी हुई हैं। ऐसे-ऐसे नोटिसों को जो लिखते हैं, न तो वे ही कुछ शर्म खाते हैं, और न पढ़ने वाले ही कि ऐसी चेतावनियाँ क्या

उन्हे निकालनी चाहिए ?”

एक दूसरी पजाबी लडकी को मैने यह पत्र पढने के लिए दिया था। उसने भी अपने कालेज-जीवन के निजी अनुभव के आधार पर इस घटना का समर्थन किया। उसने मुझे बताया कि मेरे संवाददाता ने जो-कुछ लिखा है, बहुत-सी लडकियो का अनुभव वैसा ही होता है।

एक और अनुभवी महिला ने लखनऊ की अपनी विद्यार्थिनी मित्रो के अनुभव लिखे है। सिनेमा-थियेटरो मे उनकी पिछली लाइन मे बैठे हुए लडके उन्हे दिक करते है, उनके लिए ऐसी भाषा का प्रयोग करते है, जिसे मै अश्लील के सिवा और कोई नाम नही दे सकता। उन लडकियो के साथ किये जाने वाले भद्दे मजाक भी पत्र-लेखिका ने मुझे लिखे है, लेकिन मै उन्हे यहाँ उद्धृत नही कर सकता।

अगर सिर्फ तात्कालिक निजी रक्षा का सवाल हो तो इसमे सन्देह नही कि उस लड़की ने, जो अपने को शारीरिक दृष्टि से कमजोर बताती है, जो इलाज—साईकिल के सवार पर जोर से किताब मार कर—किया, वह बिल्कुल ठीक है। यह बहुत पुराना इलाज है। मैं‘हरिजन’ मे पहले भी लिख चुका हूँ कि यदि कोई व्यक्ति जबर्दस्ती करने पर उतारू होना चाहता है तो उसके रास्ते मे शारीरिक कमजोरी भी रुकावट नही डालती, भले ही उसके मुकाबले मे शारीरिक दृष्टि से कोई बहुत बलवान विरोधी हो। और हम यह भली-भाँति जानते है कि आजकल तो जिस्मानी

ताकत इस्तेमाल करने के इतने ज्यादा तरीके ईजाद हो चुके है कि एक छोटी, लेकिन काफी समझदार लड़की किसी की हत्या और विनाश तक कर सकती है। जिस परिस्थिति का जिक्र पत्र-लेखिका ने किया है, वैसी परिस्थितियो मे लड़कियो को आत्म-रक्षा के तरीके सिखाने का रिवाज आजकल बढ़ रहा है, लेकिन वह लड़की यह भी खूब समझती है कि भले ही वह उस क्षण आत्म-रक्षा के हथियार के तौर पर अपने हाथ की किताब मार कर बच गई हो, लेकिन इस बढ़ती हुई बुराई का यह कोई असली इलाज नही है। भद्दे अश्लील मजाक के कारण बहुत घबराने या डर जाने की जरूरत नही, लेकिन इनकी ओर से ऑख मूंद लेना भी ठीक नही। ऐसे सब मामले अखबारो मे छपा देने चाहिए। ठीक-ठीक मालूम होने पर शरारतियो के नाम भी अखबारो मे छप जाने चाहिए। इस बुराई का भण्डाफोड़ करने मे किसी का झूठा लिहाज नही करना चाहिए। इस सार्वजनिक बुराई के लिये प्रबल लोक-मत जैसा कोई अच्छा इलाज नही है। इसमे कोई शक नही कि इन मामलो को जनता बहुत उदासीनता से देखती है, लेकिन सिर्फ जनता को ही क्यो दोष दिया जाय? उनके सामने ऐसे गुस्ताखी के मामले भी तो आने चाहिए। चोरी के मामलो तक के लिए उन्हे पता लगा कर छापा जाता है, तब कहीं जाकर चोरी कम होती है। इसी तरह जब तक ऐसे मामले भी दबाये जाते रहेगे, इस बुराई का इलाज नही हो सकता। पाप और बुराई भी अपने शिकार के लिए अन्धकार चाहते है। जब

उन पर रोशनी पडती है, वे खुद-ब-खुद खत्म हो जाते है।

लेकिन मुझे यह भी डर है कि आजकल की लडकी को भी तो अनेको की दृष्टि मे आकर्षक बनना प्रिय है। वह अति साहस को पसन्द करती है। आजकल की लडकी वर्षा या धूप से बचने के उद्देश्य से नही, बल्कि लोगो का ध्यान अपनी ओर खीचने के लिए तरह-तरह के भडकीले कपडे पहनती है। वह अपने को रग कर कुदरत को भी मात करना और असाधारण सुन्दर दिखाना चाहती है। ऐसी लडकियो के लिए कोई अहिंसात्मक मार्ग नही है। मै इन पृष्ठो मे बहुत बार लिख चुका हूँ कि हमारे हृदय मे अहिंसा की भावना के विकास के लिए भी कुछ निश्चित नियम होते हैं। अहिंसा की भावना बहुत महान् प्रयत्न है। विचार और जीवन के तरीके मे यह क्रान्ति उत्पन्न कर देता है। यदि मेरी पत्र-लेखिका और उस तरह के-से विचार रखने वाली लडकियाँ ऊपर बताये गये तरीके से अपने जीवन को बिल्कुल ही बदल डाले, तो उन्हे जल्दी ही यह अनुभव होने लगेगा कि उनके सम्पर्क मे आनेवाले नौजवान उनका आदर करना तथा उनकी उपस्थिति मे भद्रोचित व्यवहार करना सीखने लगे है, लेकिन यदि उन्हे मालूम होने लगे कि उनकी लाज और धर्म पर हमला होने का खतरा है, तो उनमे उस पशु-मनुष्य के आगे आत्म-समर्पण करने के बजाय मर जाने तक का साहस होना चाहिए। कहा जाता है कि कभी-कभी लडकी को इस तरह बॉध कर या मुँह मे कपडा ठूँस कर विवश कर दिया जाता है कि वह आसानी से मर भी नही सकती, जैसी कि मैने

सलाह दी है, लेकिन मै फिर भी जोरो के साथ यह कहता हूँ कि जिस लड़की मे मुकाबले का दृढ़ सकल्प है, वह उसे असहाय बनाने के लिये बॉधे गये सब बन्धनो को तोड़ सकती है। दृढ सकल्प उसे मरने की शक्ति दे सकता है।

लेकिन यह साहस और यह दिलेरी उन्ही के लिए सम्भव है, जिन्होने इसका अभ्यास कर लिया है। जिसका अहिसा पर दृढ़ विश्वास नही है, उन्हे रक्षा के साधारण तरीके सीख कर कायर युवको के अश्लील व्यवहार से अपना बचाव करना चाहिए।

पर बड़ा सवाल तो यह है कि युवक साधारण शिष्टाचार भी क्यो छोड़ दे, जिससे भली लड़कियो को हमेशा उनसे सताये जाने का डर लगता रहे ? मुझे यह जान कर दु ख होता है कि ज्यादातर नौजवानो मे बहादुरी का जरा भी माद्दा नही रहा, लेकिन उनमे एक वर्ग के नाते नामवर होने की डाह पैदा होनी चाहिए। उन्हे अपने साथियो मे होने वाली प्रत्येक ऐसी वारदात की जॉच करनी चाहिए। उन्हे हर एक स्त्री का अपनी मॉ और बहिन की तरह आदर करना सीखना चाहिए। यदि वे शिष्टाचार नही सीखते, तो उनकी बाकी सारी लिखाई-पढ़ाई फजूल है।

और क्या यह प्रोफेसरो व स्कूल-मास्टरो का फर्ज नही है कि वे लोगो के सामने जैसे अपने विद्यार्थियो की पढ़ाई के लिए जिम्मेवार होते है उसी तरह उनके शिष्टाचार और सदाचार के लिए भी उनको पूरी तसल्ली दे ?

ह० से० ३१-१२-३८

: ३२ :

आजकल की लड़कियां

ग्यारह लड़कियो की ओर से लिखा हुआ एक पत्र मुझे मिला है, जिनके नाम और पते भी मुझे भेजे गये हैं। उसमे ऐसे हेर-फेर करके जिससे उसके मतलब मे तो कोई तब्दीली न हो, पर वह पढने मे अधिक अच्छा हो जाय, मै उसे यहाँ देता हूँ —

"एक लडकी की 'आत्म-रक्षा कैसे करे ?' शीर्षक शिकायत पर, जो ३१ दिसम्बर १६३८ के 'हरिजन' मे प्रकाशित हुई है, आपने जो टीका-टिप्पणी की वह विशेष ध्यान देने के लायक़ है। आधुनिक यानी आजकल की लडकी ने आपको इस हद तक उत्तेजित कर दिया मालूम पडता है कि अन्त मे आपने उसे अनेको की दृष्टि मे आकर्षक बनने की शौकीन बतला डाला है। इससे स्त्रियो के प्रति आपके जिस विचार का पता लगता है वह बहुत स्फूर्तिदायक नहीं है।

इन दिनो जबकि पुरुषो की मदद करने और जीवन के भार मे बराबरी का हिस्सा लेने के लिए स्त्रियाँ बन्द दरवाजो से बाहर आ रही है, यह निस्सन्देह आश्चर्य की ही बात है कि पुरुषो द्वारा उनके साथ दुर्व्यवहार किये जाने पर अभी भी उन्हे ही दोष दिया जाता है। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि ऐसे उदाहरण दिये जा सकते है जिनमे दोनो का कसूर बराबर हो। कुछ लडकियाँ ऐसी हो सकती है जिन्हें अनेको की दृष्टि मे आकर्षक

बनना प्रिय हो , लेकिन उस हालत मे यह भी मानना ही पडेगा कि ऐसे पुरुष भी है जो ऐसी लडकियो की टोह मे गली-सडको मे फिरते रहते हैं। और यह तो हर्गिज नही माना जा सकता या मानना चाहिए कि आजकल की सभी लड़कियाँ इस तरह अनेको की दृष्टि मे आकर्षक बनने की ही शौकीन है या आजकल के नवयुवक सब उनकी टोह मे फिरने वाले ही है। आप खुद आजकल की काफी लडकियो के सम्पर्क मे आये है और उनके निश्चय, बलिदान एव स्त्रियोचित अन्य गुणो का आप पर जरूर असर पड़ा होगा।

आपको पत्र लिखनेवाली ने जैसे बदचलन आदमियो का ज़िक्र किया है उनके खिलाफ लोकमत तैयार करने का जहाँतक सवाल है, यह करना लडकियो का काम नही है। यह हम झूठी शर्म के लिहाज से नही, बल्कि उसके असर के लिहाज से कहती है।

लेकिन संसार-भर मे जिसकी इज्जत है ऐसे आदमी के द्वारा ऐसी बात कही जाने से एक बार फिर उसी पुरानी और लज्जाजनक लोकोक्ति की पैरवी की जाती मालूम पडती है कि 'स्त्री नर्क का द्वार है।'

इस कथन से यह न समझिए कि आजकल की लडकियाँ आपकी इज्जत नही करती। नवयुवको की तरह ही वे भी आपका सम्मान करती है। उन्हे तो सबसे बडी यही शिकायत है कि उन्हे नफरत या दया की दृष्टि से क्यो देखा जाय। उनके तौर-तरीके

अगर सचमुच दोषपूर्ण हो तो वे उन्हे सुधारने के लिए तैयार हैं, लेकिन उनकी मलामत करने से पहले उनके दोष को अच्छी तरह सिद्ध कर देना चाहिए। इस सम्बन्ध मे वे न तो स्त्रियो के प्रति शिष्टता की झूठी भावना की छाया का ही सहारा लेना चाहती हैं, न वे न्यायधीश द्वारा मनमाने तौर पर अपनी निन्दा की जाने को चुपचाप बर्दाश्त करने के लिए ही तैयार है। सचाई का सामना तो करना ही चाहिए, आजकल की लडकी मे, जिसे कि आपके कथनानुसार अनेको की दृष्टि मे आकर्षक बनना प्रिय है, उनका मुकाबिला करने जितना साहस पर्याप्त रूप में विद्यमान है।"

मुझे पत्र भेजने वालियो को शायद यह पता नही है कि चालीस बरस से ज्यादा हुए तब दक्षिण अफ्रीका मे मैंने भारतीय स्त्रियो की सेवा का कार्य करना शुरू किया था, जबकि इनमे से किसी का शायद जन्म भी न हुआ होगा। मै तो ऐसा कुछ लिख ही नहीं सकता जो नारीत्व के लिए अपमानजनक हो। स्त्रियो के प्रति इज्जत की भावना मेरे अन्दर इतनी ज्यादा है कि मै उनकी बुराई का विचार ही नहीं कर सकता। स्त्रियाँ तो, जैसाकि अग्रेजी में उन्हे कहा गया है, हमारा सुन्दरार्द्ध है। फिर मैने जो लेख लिखा वह विद्यार्थियो की निर्लज्जता पर प्रकाश डालने के लिए था, लड़कियो की कमजोरियो का ढोल पीटने के लिए नहीं। अलबत्ता रोग का निदान बतलाने के लिए, अगर मुझे उसका ठीक इलाज बतलाना हो तो, मुझे उन सब बातो का उल्लेख करना लाजिमी

था जो रोग की तह मे हो ।

आधुनिक या आज कल की लड़की का एक खास अर्थ है। इसलिए अपनी बात कुछ ही तक सीमित रखने का कोई सवाल नही था । यह याद रहे कि अंग्रेजी शिक्षा पानेवाली सभी लडकियॉ आधुनिक नही है। मै ऐसी लड़कियो को जानता हूँ जिन्हे 'आधुनिक लड़की' की भावना ने स्पर्श तक नही किया है, लेकिन कुछ ऐसी जरूर है जो आधुनिक लड़कियॉ बन गई है। मैने जो कुछ लिखा वह भारत की विद्यार्थिनियो को यह चेतावनी देने के ही लिए था कि वे आधुनिक लड़कियो की नकल करके उस समस्या को और जटिल न बनाये जो पहले ही भारी खतरा हो रही है, क्योकि जिस समय मुझे वह पत्र मिला, उसी समय मुझे आन्ध्र से भी एक विद्यार्थिनी का पत्र मिला था, जिसमे आन्ध्रक विद्यार्थियो के व्यवहार की कड़ी शिकायत की गई थी और उसका जो वर्णन उसने किया था वह लाहौर की लड़की द्वारा वर्णित व्यवहार से भी बुरा था। आन्ध्र की वह लड़की कहती है कि उसकी साथिन लड़कियॉ सादा पोशाक पहरने पर भी नहीं बच पाती, लेकिन उनमे इतना साहस नही है कि वे उन लडको के जंगलीपन का भण्डाफोड़ कर दे जो कि जिस संस्था मे पढ़ते है उसके लिए कलंक-रूप है। आन्ध्र-युनिवर्सिटी के अधिकारियो का ध्यान मै इस शिकायत की ओर आकर्पित करता हूँ।

पत्र भेजनेवाली इन ग्यारह लड़कियो को मै इस बात के लिए निमन्त्रित करता हूँ कि वे विद्यार्थियो के जंगली व्यवहार के

खिलाफ जहाद बोल दें। ईश्वर उन्हीं की मदद करता है जो अपनी मदद अपने-आप करते हैं। लडकियों को पुरुष के जगली व्यवहार से अपनी रक्षा करने की कला तो सीख ही लेनी चाहिए।

: ३२ :

ब्रह्मचर्य की व्याख्या

[मादरण मुकाम पर एक अभिनन्दन पत्र का उत्तर देते हुए लोगों के अनुरोध से गाँधीजी ने ब्रह्मचर्य पर लम्बा प्रवचन किया। उसका सार यहाँ दिया जाता है। —म०]

"आप चाहते हैं कि ब्रह्मचर्य के विषय पर कुछ कहूँ। कितने ही विषय ऐसे हैं जिनपर मैं 'नवजीवन' मे प्रसगोपान्त ही लिखता हूँ। और उनपर व्याख्यान तो शायद ही देता हूँ, क्योंकि यह विषय ही ऐसा है कि कहकर नहीं समझाया जा सकता। आप तो मामूली ब्रह्मचर्य के विषय मे सुनना चाहते हैं। 'समस्त इन्द्रियों का सयम', यह विस्तृत व्याख्या जिस ब्रह्मचर्य की है, उसके विषय मे नहीं। इस साधारण ब्रह्मचर्य को भी शास्त्रकारो ने बडा कठिन बताया है। यह बात ९९ फीसदी सच है, १ फीसदी इसमे कमी है। इसका पालन इसलिए कठिन मालूम होता है कि हम दूसरी इन्द्रियों को सयम में नहीं रखते। उनमे मुख्य है रसनेन्द्रिय। जो अपनी जिह्वा को कब्जे में रख सकता है उसके लिए ब्रह्मचर्य सुगम हो जाता है। प्राणिशास्त्र के ज्ञाताओं का कथन है कि पशु जिस दर्जे तक ब्रह्मचर्य का पालन करता है उस दरजे तक मनुष्य

नहीं करता। यह सच है। इसका कारण देखने पर मालूम होगा कि पशु अपनी जिह्वेन्द्रिय पर पूरा-पूरा निग्रह रखते है—इच्छापूर्वक नहीं, स्वभावत ही। केवल चारे पर अपनी गुजर करते है—सो भी महज पेट भरने लायक ही खाते है। वे जिन्दगी के लिए खाते हैं, खाने के लिए जीते नही है, पर हम तो इसके बिलकुल विपरीत है। माँ बच्चे को तरह-तरह के सुस्वादु भोजन कराती है। वह मानती है कि बालक के साथ प्रेम दिखाने का यही सर्वोत्तम रास्ता है। ऐसा करते हुए हम उन चीजो मे स्वाद डालते नही, बल्कि ले लेते है। स्वाद तो रहता है भूख मे। भूख के वक्त सूखी रोटी भी मीठी लगती है और बिना भूखे आदमी को लड्डू भी फीके और अस्वादु मालूम होगे, पर हम तो अनेक चीजो को खा-खाकर पेट को टसाठस भरते है और फिर कहते हैं कि ब्रह्मचर्य का पालन नहीं हो पाता। जो आँखे ईश्वर ने हमे देखने के लिए दी है उनको हम मलिन करते है और देखने की वस्तुओ को देखना नही सीखते। 'माता को क्यो गायत्री न पढ़ना चाहिए और बालको को वह क्यो गायत्री न सिखावे ?' इसकी छानबीन करने की अपेक्षा उसके तत्व—सूर्योपासना—को समझ कर सूर्योपासना करावे तो क्या अच्छा हो। सूर्य की उपासना तो सनातनी और आर्यसमाजी दोनो कर सकते है। यह तो मैंने स्थूल अर्थ आपके सामने उपस्थित किया है। इस उपासना के मानी क्या है ? अपना सिर ऊँचा रखकर, सूर्य-नारायण के दर्शन करके, आँख की शुद्धि करना। गायत्री के रचयिता ऋषि थे, द्रष्टा थे।

उन्होने कहा कि सूर्योदय मे जो नाटक है, जो सौन्दर्य है, जो लीला है वह और कही नही दिखाई दे सकती। ईश्वर के जैसा सुन्दर सूत्रधार अन्यत्र नहीं मिल सकता और आकाश से वढकर भव्य रगभूमि कही नहीं मिल सकती। पर कौन माता आज वालक की आँखे धोकर उसे आकाश दर्शन कराती है? वल्कि माता के भावो मे तो अनेक प्रपच रहते है। वडे-वडे घरो मे जो शिक्षा मिलती है उसके फल-स्वरूप तो लडका शायद वडा अधिकारी होगा, पर इस वात का कौन विचार करता है कि घर मे जाने-वेजाने जो शिक्षा वच्चो को मिलती है उससे कितनी वाते वह ग्रहण कर लेता है। माँ-वाप हमारे शरीर को ढकते है, सजाते हैं, पर इससे कहीं शोभा वढ सकती है? कपडे वदन को ढकने के लिए हैं, सर्दी-गर्मी से रक्षा करने के लिए है, सजाने के लिए नहीं। जाडे से ठिठुरते हुए लडके को जव हम अगीठी के पास धकेलेगे, अथवा मुहल्ले मे खेलने-कूदने भेज देगे, अथवा खेत मे काम पर छोड़ देगे, तभी उसका शरीर वज्र की तरह होगा। जिसने ब्रह्मचर्य का पालन किया है उसका शरीर वज्र की तरह जरूर होना चाहिए। हम तो वच्चो के शरीर का नाश कर डालते है। हम उसे जो घर मे रखकर गरमाना चाहते हैं उससे तो उसकी चमडी मे इस तरह की गरमी आती है जिसे हम छाजन की उपमा दे सकते है। हमने शरीर को दुलरा कर उसे विगाड़ डाला है।

यह तो हुई कपडे की वात। फिर घर मे तरह-तरह की वाते

करके हम उनके मन पर बुरा प्रभाव डालते है। उसकी शादी की बाते किया करते है, और इसी किस्म की चीजे और दृश्य भी उसे दिखाये जाते है। मुझे तो आश्चर्य होता है कि हम महज जंगली ही क्यो न हो गये? मर्यादा तोड़ने के अनेक साधनो के होते हुए भी मर्यादा की रक्षा हो रहती है। ईश्वर ने मनुष्य की रचना इस तरह से की है कि पतन के अनेक अवसर आते हुए भी वह बच जाता है। ऐसी उसकी लीला गहन है। यदि ब्रह्मचर्य के रास्ते से वे विघ्न हम दूर कर दे तो उसका पालन बहुत आसान हो जाय।

ऐसी हालत होते हुए भी हम दुनिया के साथ शारीरिक मुकाबला करना चाहते है। उसके दो रास्ते है। एक आसुरी और दूसरा दैवी।—आसुरी मार्ग है—शरीरबल प्राप्त करने के लिए हर किस्म के उपायो से काम लेना, हर तरह की चीजे खाना, शारीरिक मुकाबले करना, गो-मांस खाना इत्यादि। मेरे लडकपन मे मेरा एक मित्र मुझसे कहा करता कि मासाहार हमे अवश्य करना चाहिए, नही तो अंग्रेजो की तरह हट्टे-कट्टे हम न हो सकेगे। जापान को भी जब दूसरे देश के साथ मुकाबला करने का समय आया तब वहाँ गो-मास भक्षण को स्थान मिला। सो यदि आसुरी प्रकार से शरीर को तैयार करने की इच्छा हो तो इन चीजो का सेवन करना होगा।

परन्तु यदि दैवी साधन से शरीर तैयार करना हो तो ब्रह्मचर्य ही उसका एक उपाय है। जब मुझे कोई नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहता

है तब मुझे अपने पर दया आती है। इस अभिनन्दन-पत्र में मुझे नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहा है। सो मुझे कहना चाहिए कि जिन्होंने इस अभिनन्दन-पत्र का मजमून तैयार किया है उन्हें पता नहीं है कि नैष्ठिक ब्रह्मचर्य किस चीज का नाम है। और जिसके बाल-बच्चे हुए हैं उसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी कैसे कह सकते हैं? नैष्ठिक ब्रह्मचारी को न तो कभी बुखार आता है न कभी सिर दर्द करता है न कभी खाँसी होती है और न कभी अपेंडिसाइटिस होता है। डाक्टर लोग कहते हैं कि नारंगी का बीज आँत में रह जाने से भी अपेंडिसाइटिस होता है, परन्तु जिसका शरीर स्वच्छ और निरोगी होता है उसमें ये बीज टिक ही नहीं सकते। जब आँतें शिथिल पड़ जाती हैं तब वे ऐसी चीजों को अपने आप बाहर नहीं निकाल-सकतीं। मेरी भी आँतें शिथिल हो गई होंगी। इसी से मैं ऐसी कोई चीज हजम न कर सका हूँगा। बच्चे ऐसी अनेक चीजें खा जाते हैं। माता इसका कहाँ ध्यान रख सकती है? पर उसकी आँत में इतनी शक्ति स्वाभाविक तौर पर ही होती है। इसीलिए मैं चाहता हूँ कि मुझपर नैष्ठिक ब्रह्मचर्य के पालन का आरोपण करके कोई मिथ्याचारी न हो। नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का तेज तो मुझसे अनेक-गुना अधिक होना चाहिए। मैं आदर्श ब्रह्मचारी नहीं। हाँ, यह सच है कि मैं वैसा बनना चाहता हूँ। मैंने तो आपके सामने अपने अनुभव की कुछ बूँदें पेश की हैं, जो ब्रह्मचर्य की सीमा बताते हैं। ब्रह्मचारी रहने का अर्थ यह नहीं कि मैं किसी स्त्री को स्पर्श न करूँ, अपनी बहन का स्पर्श न करूँ, पर ब्रह्म-

चारी होने का अर्थ यह है कि स्त्री का स्पर्श करने से किसी प्रकार का विकार न उत्पन्न हो, जिस तरह कि कागज को स्पर्श करने से नहीं होता। मेरी बहन बीमार हो और उसकी सेवा करते हुए, उसका स्पर्श करते हुए ब्रह्मचर्य के कारण मुझे हिचकना पडे तो वह ब्रह्मचर्य तीन कौड़ी का है। जिस निर्विकार दशा का अनुभव हम मृत-शरीर को स्पर्श करके कर सकते है उसी का अनुभव जब हम किसी बडी सुन्दरी युवती का स्पर्श करके कर सके तभी हम ब्रह्मचारी है। यदि आप यह चाहते हो कि बालक ऐसे ब्रह्मचर्य को प्राप्त करे, तो इसका अभ्यास-क्रम आप नहीं बना सकते, मुझ जैसा अधूरा भी क्यो न हो, पर ब्रह्मचारी ही बना सकता है।

ब्रह्मचारी स्वाभाविक सन्यासी होता है। ब्रह्मचर्याश्रम सन्यासाश्रम से भी बढ़कर है, पर उसे हमने गिरा दिया है। इससे हमारा गृहस्थाश्रम भी बिगड़ा है, वान-प्रस्थाश्रम भी बिगड़ा है और सन्यास का तो नाम भी नहीं रह गया है। ऐसी हमारी असहाय अवस्था हो गई है।

ऊपर जो आसुरी मार्ग बताया गया है उसका अनुकरण करके तो आप पॉच-सौ वर्षो तक भी पठानो का मुकाबला न कर सकेंगे। दैवी-मार्ग का अनुकरण यदि आज हो तो आज ही पठानो का मुकाबला हो सकता है, क्योकि दैवी साधन से आवश्यक मानसिक परिवर्त्तन एक क्षण मे हो सकता है, पर शारीरिक परिवर्त्तन करते हुए युग बीत जाते है। इस दैवी-मार्ग का अनुकरण तभी

हमसे होगा जब हमारे पल्ले पूर्वजन्म का पुण्य होगा, और माता-पिता हमारे लिए उचित सामग्री पैदा करेगे।

हि० न० २६-१-२५

: ३४ :

विवाह संस्कार

[गाधी सेवा संघ के हुदली मे हुए तृतीय अधिवेशन मे गांधीजी की पोती तथा श्री० महादेव देसाई की वहन का विवाह हुआ था।

अपने स्वभाव के विपरीत, गाधीजी ने उस दिन सबकी उपस्थिति मे वर-वधुओ से जो कहना था वह नही कहा, वल्कि खानगी तौर पर उन्हे उपदेश दिया। किन्तु गाधीजी के वे विचार सभी दम्पतियो के लिए हितकर है, अत मै उन विचारो को नीचे साराश रूप मे देने का, जहाँतक मुझसे हो सकेगा, प्रयत्न करता हूँ। —म० ह० दे०]

"तुम्हे यह जानना ही चाहिए, कि मै इन संस्कारो मे उसी हद तक विश्वास करता हूँ, जहाँतक कि ये हमारे अन्दर कर्तव्य-पालन की भावना को जगाते है। जब से मैने अपने सम्बन्ध मे विचार करना शुरू किया, तभी से मेरी यह मनोवृत्ति है। तुमने जिन मत्रो का उच्चारण किया है और जिन प्रतिज्ञाओ को लिया है, वे सब-की-सब संस्कृति मे थीं, पर तुम्हारे लिए उन सबका

अनुवाद कर दिया गया था। संस्कृत का हमने इसलिए आश्रय लिया, क्योकि मै जानता हूँ कि संस्कृत-शब्दो मे वह शक्ति है, जिसके प्रभाव के नीचे आना मनुष्य पसन्द ही करेगा।

"विवाह सस्कार के समय पति ने जो इच्छाये प्रकट की थी उनमे एक यह भी है कि वधू अच्छे निरोगी पुत्र की जननी बने। इस कामना से मुझे आघात नही पहुँचा। इसके मानी यह नही है कि सन्तान पैदा करना लाजिमी है, पर इसका अर्थ यह है कि यदि सन्तान की आवश्यकता है, तो शुद्ध धर्म भावना से विवाह करना जरूरी है। जिसे सन्तान की जरूरत नही, उसे विवाह करने की कोई आवश्यकता ही नही। विषय-भोग की तृप्ति के लिए किया हुआ विवाह विवाह नही। वह तो व्यभिचार है। इसलिए आज के विवाह-सस्कारो का अर्थ यह है कि जब स्त्री-पुरुप दोनो की ही सन्तति के लिए स्पष्ट इच्छा हो, केवल तभी उन्हे सम्भोग की अनुमति मिलती है। यह सारी ही कल्पना पवित्र है। इसलिए इस काम को प्रार्थनापूर्वक ही करना होगा। कामोत्तेजना और विषय-सुख की प्राप्ति के लिए साधारणतया स्त्री-पुरुप मे जो प्रेमासक्ति देखने मे आती है, उसका इस पवित्र कल्पना मे नाम भी नही। अगर दूसरी सन्तान नही चाहिए, तो स्त्री-पुरुष का ऐसा सम्भोग जीवन मे केवल एक ही बार होगा। जो दम्पति चारित्र्य और शरीर से स्वस्थ नही है, उन्हे सम्भोग करने की कोई आवश्यकता नही, और अगर वे ऐसा करते है तो वह 'व्यभिचार' है। अगर तुमने यह सीखा हो कि विवाह विषय-तृप्ति के लिए है, तो

तुम्हे यह चीज भूल जानी चाहिए। यह तो एक वहम है। तुम्हारा सारा ही सस्कार पवित्र अग्नि की साक्षी मे हुआ है। तुम्हारे अन्दर जो भी काम-वासना हो उसे वह पवित्र अग्नि भस्म कर दे।

"एक और वहम से तुम्हे अलग रखने के लिए मै तुमसे कहूँगा। यह वहम दुनिया मे आजकल जोरो से फैलता जा रहा है। यह कहा जा रहा है कि इन्द्रिय-निग्रह और सयम गलत तरीके है, और विषय-वासना की अबाध तृप्ति और स्वच्छन्द प्रेम सबसे अधिक प्राकृतिक वस्तु है। इससे अधिक विनाशकारी वहम कभी सुनने मे नहीं आया। हो सकता है कि तुम आदर्श तक न पहुँच सको, तुम्हारा शरीर अशक्त हो; पर इससे आदर्श को नीचा न कर देना, अधर्म को धर्म न बना लेना। अपनी आत्म-निर्बलता के क्षणो मे मेरा यह कहना याद रखना। इस पवित्र अवसर की स्मृति तुम्हे डॉवाडोल न होने दे, और तुम्हे इन्द्रियग्रह की ओर ले जाय। विवाह का अर्थ ही इन्द्रिय-निग्रह और काम-वासना का दमन है। अगर विवाह का कोई दूसरा अर्थ है, तो फिर वह स्वार्पण नहीं, किन्तु सन्तति प्राप्ति को छोडकर किसी दूसरे प्रयोजन से किया हुआ विवाह है। विवाह ने तुम्हे मैत्री और समानता के स्वर्ण-सूत्र से बाध दिया है। पति को अगर 'स्वामी' कहा गया है तो पत्नी को 'स्वामिनी'। एक दूसरे के दोनो सहायक है, जीवनके समस्त कार्य और कर्तव्य पूरे करने मे वे एक-दूसरे का सहयोग करने वाले है। लडको ! तुम से मै यह कहूँगा कि अगर ईश्वर ने तुम्हे अच्छी बुद्धि और

उज्ज्वल भावनाये बख्शी है तो तुम अपनी पत्नियो मे भी अपने इन सद्गुणो का प्रवेश करो। उनके तुम सच्चे शिक्षक और मार्ग-दर्शक बनना, उन्हे मदद देना और उन्हे मार्ग दिखाना, पर कभी उनके बाधक न बनना, न उन्हे गलत रास्ते पर ले जाना। तुम्हारे बीच मे विचार, वचन और कर्म का पूर्ण सामंजस्य हो, तुम अपने हृदय की बात एक-दूसरे से न छिपाओ, तुम एकात्म बन जाओ।

"मिथ्याचारी या दम्भी न बनना। जिस काम का करना तुम्हारे लिए असम्भव हो, उसे पूरा करने के निष्फल प्रयत्नो मे अपना स्वास्थ्य न गिरा बैठना। इन्द्रिय-निग्रहसे कभी किसीका स्वास्थ्य नष्ट नही होता। जिससे मनुष्यका स्वास्थ्य नष्ट होता है, वह निग्रह नही किन्तु बाह्य अवरोध है। सच्चे आत्म-निग्रही व्यक्ति की शक्ति तो दिन-दिन बढती है, और शान्ति के वह अधिकाधिक समीप पहुँचता जाता है। आत्म-निग्रह की सबसे पहली सीढी विचारो का निग्रह है। अपनी मर्यादाओ को समझ लो, और जितना हो सके उतना ही करो। मैने तो तुम्हारे सामने आदर्श रख दिया है— एक समकोण खीच दिया है। अपनी शक्ति के अनुसार जितना तुम से हो सके उतना प्रयत्न इस आदर्श तक पहुचने का करना। पर अगर तुम असफल हो जाओ तो दु ख या शर्म का कोई कारण नही। मैने तो तुम्हे सिर्फ यह बतलाया है कि जो यज्ञोपवीत्-संस्कार की तरह विवाह भी एक स्वार्पण सस्कार है, एक नया जन्म धारण करना है। मैने तुम से जो कहा है, उससे भयभीत

न होना, और न कोई दुर्बलता महसूस करना। हमेशा विचार, वचन और कर्म की पूर्ण एकता को अपना लक्ष्य बनाये रहना। विचार मे जितनी सामर्थ्य है, उतनी और किसी वस्तु मे नही। कर्म वचनका अनुसरण करता है और वचन विचार का। संसार एक महान् प्रबल विचार का ही परिणाम है, और जहाँ विचार प्रबल और पवित्र है, वहाँ परिणाम भी हमेशा प्रबल और पवित्र होगा। मै चाहता हूँ कि तुम एक उच्चादर्श का अभेद्य कवच धारण करके जाओ, और मै तुम्हे विश्वास दिलाता हूँ कि तुम्हे कोई भी प्रलोभन हानि नही पहुंचा सकेगा, कोई भी अपवित्रता तुम्हारा स्पर्श नही कर सकेगी।

"जिन विधियो को तुम्हे समझाया गया है, उन्हे याद रखना। 'मधु-पर्क' की सीधी-सादी दीखनेवाली विधि को ही ले लो। इसका अभिप्राय यह है कि सारा संस्कार मधु से परिपूर्ण है, जरूरत सिर्फ यह है कि जब बाकी सब लोग उसमे से अपना हिस्सा ले-ले, तब तुम उसे ग्रहण करो। अर्थात् त्याग से ही आनन्द मिलता है।"

"लेकिन," एक वर ने पूछा, "अगर सन्तानोत्पत्ति की इच्छा न हो, तो क्या विवाह ही नही करना चाहिए?"

"निश्चय ही नही," गाँधी जी ने कहा, "आध्यात्मिक विवाहो मे मेरा विश्वास नही है। कई ऐसे उदाहरण जरूर मिलते है कि जिनमे पुरुषो ने शारीरिक सम्भोग का कोई खयाल न कर सिर्फ स्त्रियो की रक्षा करने के विचार से ही विवाह किये, लेकिन यह

निश्चय है कि ऐसे उदाहरण बहुत कम बिरले ही है। पवित्र वैवाहिक जीवन के बारे मे मैने जो कुछ लिखा है, वह सब तुम्हे ज़रूर पढ लेना चाहिए। मुझ पर तो, मैने महाभारत मे जो-कुछ पढा है, दिन-पर-दिन उसका ज्यादह-से-ज्यादह असर पडता जा रहा है। उसमे व्यास के नियोग करने का वर्णन है। उसमे व्यास को सुन्दर नही बताया है, बल्कि वह तो इससे विपरीत थे, उनकी शक्ल-सूरत का उसमे जो वर्णन आया है, उससे मालूम पड़ता है कि देखने मे वह बडे कुरूप थे, प्रेम-प्रदर्शन के लिए कोई हाव-भाव भी उन्होने नही बताये, बल्कि सम्भोग से पहले अपने सारे शरीर पर उन्होने घी चुपड़ लिया था। उन्होने जो सम्भोग किया वह विषय-वासना की पूर्ति के लिए नही, बल्कि सन्तानो-पत्ति के लिए किया था। सन्तान की इच्छा बिल्कुल स्वाभाविक है, और जब एक बार यह इच्छा पूर्ण हो जाय, तो फिर सम्भोग नही करना चाहिए।

मनु ने पहली सन्तति को धर्मज अर्थात् धर्म-भावना से उत्पन्न बताया है और उसके बाद पैदा होनेवाले को कामज अर्थात् काम-वृत्ति के फल-स्वरूप पैदा होनेवाला कहा है। सार-रूप मे वैपयिक सम्बन्धो का यही विधान है। और 'विधान ही ईश्वर है और विधान या नियम का पालन ही ईश्वर की आज्ञा को मानना है।' यह याद रक्खो कि तीन बार तुमसे यह वचन लिया गया है कि 'किसी भी रूप मे मैं इस विधान का भंग नही करूगा।' अगर मुट्ठी-भर स्त्री-पुरुष ही हमे ऐसे मिल जायं, जो इस विधान से बंधने

को तैयार हो तो बलवान और सच्चे स्त्री-पुरुषो की एक जाति-की-जाति पैदा हो जायगी।"

: ३५ :

अश्लील विज्ञापन

एक मासिक पत्र मे प्रकाशित एक अत्यन्त बीभत्स पुस्तक के विज्ञापन की कतरन एक बहन ने मुझे भेजी है और लिखा है —

"...के पृष्ठो पर नजर डालते हुए यह विज्ञापन मेरे देखने मे आया। मै नहीं जानती कि यह मासिक पत्र आपके पास जाता है या नहीं। आपके पास यह जाता भी हो तो भी मेरे खयाल में इसकी तरफ नजर डालने का आपको कभी समय नहीं मिलता होगा। पहले भी एक बार मैने आपसे 'अश्लील विज्ञापनो' के बारे मे बात की थी। मेरी यह बडी ही इच्छा है कि इस विषय मे आप किसी समय कुछ लिखे। जिस पुस्तक का यह विज्ञापन है उस क़िस्म की पुस्तको की आज बाजार मे बाढ़-सी आ रही है, यह बिल्कुल सच्ची बात है, पर जैसे जबाबदार पत्रो के लिए क्या यह उचित है कि वे ऐसी गन्दी पुस्तको की बिक्री को प्रोत्साहन दे? इन चीजो से मेरा स्त्री-हृदय इतना अधिक दुखता है कि मै सिवा आपके और किसी को लिख नहीं सकती। ईश्वर ने स्त्री को एक विशेष उद्देश्य के लिए जो वस्तु दी है उसका विज्ञापन लम्पटता को उत्तेजन देने के लिए किया जाय, यह चीज इतनी हीन है कि इसके प्रति घृणा शब्दो से प्रकट नहीं की जा

सकती । मै चाहती हूॅ कि इस सम्बन्ध मे भारत के प्रमुख अखबारो और मासिक-पत्रो की क्या जवाबदारी है, इसके बारे मे आप लिखे । आपके पास आलोचना के लिए भेज सकूॅ, ऐसी यह कोई पहली ही कतरन नही है ।"

इस विज्ञापन मे से कुछ भी अश मै यहाँ उद्धृत नही करना चाहता । पाठको से सिर्फ इतना ही कहता हूॅ कि जिस पुस्तक का यह विज्ञापन है उसमे के व्यजित लेखो का वर्णन करने मे जितनी अश्लील भाषा का उपयोग किया जा सकता है उतना किया गया है । इस पुस्तक का नाम 'स्त्री के शरीर का सौन्दर्य' है, और विज्ञापन देनेवाला फर्म पाठको से कहता है कि जो यह पुस्तक खरीदेगा उसे 'नववधू के लिए नया ज्ञान' और 'संभोग अथवा संभोगी को कैसे रिझाया जाय ?' नामक यह दो पुस्तके और मुफ्त दी जायॅगी ।

इस किस्म की पुस्तको का विज्ञापन करनेवालो को मै किसी तरह रोक सकता हूॅ या पत्र-सम्पादको और प्रकाशको से उनके अखबारो द्वारा मुनाफा उठाने का इरादा मै छुड़वा सकता हूॅ, ऐसी आशा अगर यह बहन रखती है तो वह व्यर्थ है। ऐसी अश्लील पुस्तको या विज्ञापनो के प्रकाशको से मै चाहे जितनी अपील करूॅ उससे कोई मतलब निकलने का नही, किन्तु मै इस पत्र लिखने वाली बहन से और ऐसी ही दूसरी विदुषी बहनो से इतना कहना चाहता हूॅ कि वे बाहर मैदान मे आवे और जो काम खास करके उनका है, और जिसके लिए उनमे खास योग्यता है उस काम को वे

शुरू करावें। अक्सर देखने में आया है कि किसी मनुष्य को खराब नाम दे दिया जाता है और कुछ समय बाद वह स्त्री या पुरुष ऐसा मानने लगता है कि वह खुद खराब है। स्त्री को 'अबला' कहना उसे बदनाम करना है। मैं नहीं जानता कि स्त्री किस प्रकार अबला है। ऐसा कहने का अर्थ अगर यह हो कि स्त्री में पुरुष की जैसी पाशविक वृत्ति नहीं है या उतनी मात्रा में नहीं है जितनी कि पुरुष में होती है, तो यह आरोप माना जा सकता है, पर यह चीज तो स्त्री को पुरुष की अपेक्षा पुनीत बनाने वाली है, और स्त्री पुरुष की अपेक्षा पुनीत तो है ही। वह अगर आघात करने में निर्बल है, तो कष्ट सहन करने में बलवान है। मैंने स्त्री को त्याग और अहिंसा की मूर्ति कहा है। अपने शील या सतीत्व की रक्षा के लिए पुरुष पर निर्भर न रहना उसे सीखना है। पुरुष ने स्त्री के सतीत्व की रक्षा की हो ऐसा एक भी उदाहरण मुझे मालूम नहीं। वह ऐसा करना चाहे तो भी नहीं कर सकता। निश्चय ही राम ने सीता के या पाँच पाण्डवों ने द्रौपदी के शील की रक्षा नहीं की। इन दोनों सतियों ने अपने सतीत्व के बल से ही अपने शील की रक्षा की। कोई भी मनुष्य बगैर अपनी सम्मति के अपनी इज्जत-आबरू नहीं खोता। कोई नर-पशु किसी स्त्री को बेहोश करके उसकी लाज लूट ले तो इससे उस स्त्री के शील या सतीत्व का लोप नहीं होगा, इसी तरह कोई दुष्टा स्त्री किसी पुरुष को जड बना देने वाली दवा खिलादे और उससे अपना मनचाहा कराये तो इससे उस पुरुष के शील या चारित्र्य का नाश नहीं होता।

आश्चर्य तो यह है कि पुरुषो के सौन्दर्य की प्रशंसा मे पुस्तके बिल्कुल नहीं लिखी गई। तो फिर पुरुष की विषय-वासना उत्तेजित करने के लिए ही साहित्य हमेशा क्यो तैयार होता रहे? यह बात तो नहीं कि पुरुष ने स्त्री को जिन विशेषणो से भूषित किया है उन विशेषणो को सार्थक करना पसन्द है? स्त्री को क्या यह अच्छा लगता होगा कि उसके शरीर के सौन्दर्य का पुरुष अपनी भोग-लालसा के लिए दुरुपयोग करे? पुरुष के आगे अपनी देह की सुन्दरता दिखाना क्या उसे पसन्द होगा? यदि हॉ, तो किस लिए? मै चाहता हूँ कि ये प्रश्न सुशिक्षित बहने खुद अपने दिल से पूछे। ऐसे विज्ञापनो और ऐसे साहित्य से उनका दिल दुखता हो तो उन्हे इन चीजो के लिए अविराम युद्ध चलाना चाहिए, और एक क्षण मे वे इन चीजो को बन्द करा देगी। स्त्री मे जिस प्रकार बुरा करने की, लोक का नाश करने की शक्ति है, उसी प्रकार भला करने की, लोक-हित-साधन करने की शक्ति भी उसमे सोई हुई पड़ी है। यह भान अगर स्त्री को हो जाय तो कितना अच्छा हो। अगर वह यह विचार छोड़ दे कि वह खुद अबला है और पुरुष के खेलने की गुड़िया होने के ही योग्य है तो वह खुद अपना तथा पुरुष का—फिर चाहे वह उसका पिता हो, पुत्र हो या पति हो—जन्म सुधार सकती है, और दोनो के ही लिए इस संसार को अधिक सुखमय बना सकती है। राष्ट्र-राष्ट्र के बीच के पागलपन-भरे युद्धो से और इससे भी ज्यादा पागलपन-भरे समाज-नीति की नीव के विरुद्ध लड़े जाने वाले युद्धो से अगर समाज को अपना

संहार नहीं होने देना है, तो स्त्री को पुरुष की तरह नहीं, जैसे कि कुछ स्त्रियाँ करती हैं, बल्कि स्त्री की तरह अपना योग देना ही होगा। अधिकांशत बिना किसी कारण के ही मानवप्राणियों के संहार करने की जो शक्ति पुरुष में है उस शक्ति में उसकी हम-सरी करने से स्त्री मानवजाति सुधार नहीं सकती। पुरुष की जिस भूल से पुरुष के साथ-साथ स्त्री का भी विनाश होने वाला है उस भूल में से पुरुष को बचाना उसका परम कर्तव्य है, यह स्त्री को समझ लेना चाहिए। यह वाहियात विज्ञापन तो सिर्फ यही बताता है कि हवा का रुख किस तरफ है। इसमें बेशर्मी के साथ स्त्री का अनुचित लाभ उठाया गया है। 'दुनिया की जगली जातियों की स्त्रियों के शरीर-सौन्दर्य' को भी इसने नहीं छोड़ा।

ह० से० २१-११-३६

: ३६ :

अश्लील विज्ञापनों को कैसे रोका जाय ?

अश्लील विज्ञापन सम्बन्धी मेरा लेख देखकर एक सज्जन लिखते हैं —

"जो अखबार, आपने लिखा, वैसी अश्लील चीजों के इश्तिहार देते हैं उनके नाम जाहिर कर के आप अश्लील विज्ञापनों का प्रकाशन रोकने के लिए बहुत-कुछ कर सकते हैं।"

इन सज्जन ने जिस सेंसरशिप की मुझे सलाह दी है उसका

भार मै नही ले सकता , लेकिन इससे ‘अच्छा एक उपाय मै सुझा सकता हूॅ । जनता को अगर यह अश्लीलता अखरती हो, तो जिन अखवारो या मासिक-पत्रो मे आपत्तिजनक विज्ञापन निकले, उनके ग्राहक यह कर सकते है कि उन अखबारो का ध्यान इस ओर आकर्पित करे और अगर फिर भी वे ऐसा करने से बाज न आये तो उन्हे खरीदना बन्द करदे । पाठको को यह जानकर खुशी होगी कि जिस बहन ने मुझे अश्लील विज्ञापनो की शिकायत भेजी थी, उसने इस दोष के भागी मासिक-पत्र के सम्पादक को भी इस बारे मे लिखा था, जिसपर उन्होने इस भूल के लिए खेद-प्रकाश करते हुए उसे आगे से न छापने का वादा किया है ।

यह कहते हुए भी मुझे खुशी होती है कि मैने इस बारे मे जो-कुछ लिखा, उसका कुछ अन्य पत्रो ने भी समर्थन किया है । ‘निस्पृह’ (नागपुर) के सम्पादक लिखते है —

“अश्लील विज्ञापनो के बारे मे ‘हरिजन’ मे आपने जो लेख लिखा है उसे मैने बहुत सावधानी के साथ पढ़ा । यही नही, बल्कि मैने उसका अविकल अनुवाद भी ‘निस्पृह’ मे दिया है और एक छोटी-सी सम्पादकीय टिप्पणी भी उसपर मैने लिखी है ।

मै बतौर नमूने के एक विज्ञापन इस पत्र के साथ भेज रहा हूॅ, जो अश्लील न होते हुए भी एक तरह से अनैतिक तो है ही । इस विज्ञापन मे साफ झूठ है । आमतौर पर गॉववाले ही ऐसे विज्ञापनो के चक्कर मे फॅसते है । मै ऐसे विज्ञापन से लेने

हमेशा इन्कार करता रहा हूँ और इस विज्ञापनदाता को भी यही लिख रहा हूँ, जैसे अख़बार में निकलने वाली समस्त पाठ्य-सामग्री पर सम्पादक की निगाह रहना जरूरी है, उसी तरह विज्ञापनों पर नज़र रखना भी उसका कर्तव्य है। और कोई सम्पादक अपने अख़बार का ऐसे लोगों द्वारा उपयोग नहीं होने दे सकता, जो भोले-भाले देहातियों की आँखों में धूल भोंक कर उन्हें ठगना चाहते हैं।

ह० २-१-३७

परिशिष्ट भाग

: १ :

सन्तति-निरोध की हिमायतिन

दरिद्रनारायण की सेवा मे अपना सब-कुछ समर्पण कर देने-वाले बूढे किसान से सर्वथा विपरीत, इग्लैण्ड की एक श्रीमती हाउ-मार्टिन हैं, जो कृत्रिम सन्तति-निरोध की जबर्दस्त प्रचारिका है और भारत के गरीबो की मदद के लिए अपना सन्देश लेकर भारत पधारी हैं। गाधीजी के पास आप इस इरादे से आई हैं कि या तो उन्हे अपने विचारो का बनाले या खुद उनके विचारो पर आजॉये। निस्सन्देह, आप हिन्दुस्तान मे पहली ही बार आई हैं और यहॉ के गरीबो की हालत अभी आपने मुश्किल से ही देखी होगी, इसलिए ब्रिटेन की गन्दी बस्तियो के अपने अनुभव की ही आपने चर्चा की और उन 'अबलाओ' का बडा पक्ष लिया, जिन्हे कि सशक्त पुरुष के आगे झुकना पडता है।

लेकिन इस पहली ही दलील पर गाधीजी ने उन्हे आडे हाथो लिया। 'कोई स्त्री अबला नहीं है।' गॉधीजी ने कहा, "कमजोर-से-कमजोर स्त्री भी पुरुष से ज्यादा बल रखती है, और अगर आप भारत के गॉवो मे चले तो मै यह बात आपको दिखला देने के लिए पूरी तरह तैयार हूँ। वहाँ कोई भी स्त्री आपसे यही कहेगी कि उसकी इच्छा न हो तो माई का जाया कोई ऐसा लाल नहीं जो उसपर बलात्कार कर सके। यह बात अपनी

पत्नी के साथ के खुद अपने अनुभव से मै कह सकता हूँ, और यह याद रखिए कि मेरा उदाहरण कोई बिरला ही नहीं है। सच तो यह है कि झुकने के बजाय मर जाने की भावना मौजूद हो तो कोई राक्षस भी स्त्री को अपनी दुष्ट चेष्टा के लिए मजबूर नहीं कर सकता। यह तो परस्पर की रजामन्दी की बात है। स्त्री-पुरुष दोनो मे ही पशुत्व और देवत्व का सम्मिश्रण है, और अगर हम उनमे से पशुत्व को दूर कर सके तो यह श्रेष्ठ और हितकर ही होगा।"

"लेकिन", श्रीमती हाउ-मार्टिन ने पूछा, "अगर पुरुष अधिक बच्चो से बचने के लिए अपनी पत्नी को छोड़कर पर-स्त्री के पास जाये तो बेचारी पत्नी क्या करे ?"

"यह तो आप अपनी बात बदल रही है, लेकिन यह याद रखिए कि अगर आप अपनी दलील को निर्भ्रान्त न रक्खेगी तो आप जरूर गलत परिणाम पर पहुँचेगी। व्यर्थ की कल्पनाये करके पुरुष को पुरुष से कुछ और तथा स्त्री को स्त्री से अन्यथा बनाने की कोशिश न कीजिए। आपके सन्देश का आधार क्या है, यह तो मुझे समझ लेने दीजिए। जब मैने यह कहा कि सन्तति-निरोध का आपका प्रचार काफी फैल चुका है, तब इस विनोद के पीछे कुछ गम्भीरता थी, क्योकि मुझे यह मालूम है कि ऐसे भी कुछ स्त्री-पुरुष है जो समझते है कि सन्तति-निरोध मे ही हमारी मुक्ति है। इसलिए, मै आपसे इसका आधार समझ लेना चाहता हूँ।"

"मै इसमे संसार की मुक्ति नही देखती", श्रीमती हाउ-मार्टिन ने कहा, "मै तो सिर्फ यही कहती हूँ कि सन्तति-निरोध का कोई रूप इख्तियार किये बगैर प्रजा की मुक्ति नही है। आप ऐसा एक तरीक़े से करेगे, मै दूसरे तरीके से करूँगी। आपके तरीके का भी मै प्रतिपादन करती हूँ, लेकिन सभी हालात मे नही। आप तो, मालूम होता है, एक सुन्दर वस्तु को ऐसा समझते है मानो

वह कोई आपत्तिजनक चीज हो पर यह याद रखिए कि जो पथ जब नये जीवन का निर्माण करने जाते हैं तो वे पशुत्व से ऊपर उठकर देवत्व के अत्यन्त निकट होते हैं। इस क्रिया में कोई बात ऐसी है जो बड़ी सुन्दर है।"

"यहाँ भी आप भ्रम में हैं", गांधीजी ने कहा, "नये जीवन का निर्माण देवत्व के अत्यन्त निकट है, इस बात को मैं मानता हूँ। मैं जो-कुछ चाहता हूँ वह तो यही है कि यह दवी रूप में ही किया जाये। मतलब यह कि पुरुष-स्त्री नये जीवन का निर्माण करने यानी सन्तानोत्पत्ति के सिवा और किसी इच्छा से सम्भोग न करें, लेकिन अगर वे खाली काम-वासना शान्त करने के लिए ही सम्भोग करें तब तो वे शैतानियत के ही बहुत नजदीक होते हैं। दुर्भाग्यवश, मनुष्य इस बात को भूल जाता है कि वह देवत्व के निकटतम है, अपने अन्दर विद्यमान पशु-वासना के पीछे भटकने लगता है और पशु से भी बदतर बन जाता है।"

"लेकिन पशुत्व की आपको क्यों निन्दा करनी चाहिए ?"

"मैं निन्दा नहीं करता। पशु तो, उसके लिए कुदरत ने जो नियम बनाये हैं, उनका पालन करता है। सिंह अपने क्षेत्र में एक श्रेष्ठ प्राणी है और मुझको खा जाने का उसे पूरा अधिकार है, लेकिन मेरी यह खासियत नहीं है कि मैं पंजे बढ़ाकर आपके ऊपर झपटूँ। मैं ऐसा करूँ तो अपने को हीन बनाकर पशु से भी बदतर बन जाऊँगा।"

"मुझे अफसोस है," श्रीमती हाउ-मार्टिन ने कहा, "कि मैंने अपने भाव ठीक तरह व्यक्त नहीं किये। इस बात को मैं स्वीकार करती हूँ कि अधिकांश मामलों में इससे उनकी मुक्ति नहीं होगी, लेकिन यह ऐसी बात जरूर है जिससे जीवन ऊँचा बनेगा। मेरी बात आप समझ गये होंगे, हालाँकि मुझे शक है कि मैं अपनी

बात बिलकुल स्पष्ट नही कर पाई हूँ।"

"नही-नही, मै आपकी अव्यवस्थिता का कोई बेजा फायदा नही उठाना चाहता। हॉ, यह जरूर चाहता हूँ कि मेरा दृष्टिकोण आप समझ ले। गलतफहमियो पर न चलिए। उपरि मार्ग और अधो-मार्ग मे से कोई एक आदमी को जरूर चुनना होगा, लेकिन उसमे पशुत्व का अंश होने के कारण वह उपरि मार्ग के बदले अधो-मार्ग ही आसानी से चुनेगा—खासकर जबकि अधो-मार्ग उसके सामने सुन्दर आवरण से परिवेष्टित हो। सदगुण के परदे मे पाप सामने आने पर मनुष्य आसानी से उसका शिकार हो जाता है, और मेरी स्टोप्स तथा दूसरे (कृत्रिम सन्तति-निरोध के हिमायती) यही कर रहे है। मै अगर विलासिता का प्रचार करना चाहूँ तो, मै जानता हूँ, मनुष्य आसानी से उसे ग्रहण कर लेगे। मै जानता हूँ कि आप-जैसे लोग अगर निस्वार्थ भाव से उत्साह के साथ अपने सिद्धान्त के प्रचार मे लगे रहे तो जाहिरातौर पर शायद आपको विजय भी मिल जाये, लेकिन मै यह भी जानता हूँ कि ऐसा करके आप निश्चित रूप से मृत्यु के मार्ग पर पहुँचेगे–इसमे शक नही कि ऐसा आप करेगे इस बात को बिलकुल न जानते हुए कि आप कितनी शरारत कर रहे है। अधोमार्ग की प्रवृत्ति ऐसी है कि उसके लिए किसी समर्थन या दलील की जरूरत नही होती। यह तो हमारे अन्दर मौजूद ही है, और अगर हम इसपर रोक लगाकर इसे नियंत्रित न रक्खे तो रोग और महामारी का खतरा है।"

श्रीमती हाउ-मार्टिन ने जो अब तक देवत्व और शैतानियत के बीच भेद को स्वीकार करती मालूम पड़ती थी, कहा कि ऐसा कोई भेद नही है और लोग समझते है उससे कही ज्यादा वे परस्पर-सम्बद्ध है। सन्तति-निरोध की सारी फिलासफी के पीछे

दरअसल यही बात है, और सन्तति-निरोध के हिमायती यह भूल जाते हैं कि यही उनका रामबाण इलाज है।

"तो आप ऐसा समझती हैं कि देव और पशु एक ही चीज़ हैं? क्या आप सूर्य मे विश्वास करती हैं? अगर करती है तो क्या आप यह नहीं सोचतीं कि छाया मे भी आपको विश्वास करना ही चाहिए?" गांधीजी ने पूछा।

"आप छाया को शैतान क्यो कहते हैं?"

"आप चाहें तो उसे ईश्वर-इतर कह सकती हैं।"

"मै यह नहीं समझती कि छाया मे 'ईश्वरेतर' नही है। जीवन तो सर्वत्र है।"

"जीवन का अभाव जैसी भी कोई चीज है। क्या आप जानती हैं कि हिन्दू लोग अपने-अपने प्रियतमो तक के शरीर को उनकी जीवन-ज्योति के बुझते ही जल्द-से-जल्द जलाकर भस्म कर देते हैं? यह ठीक है कि समस्त जीवन मे मूलभूत एकता है, लेकिन विभिन्नता भी है। हमारा काम है कि उस विभिन्नता मे प्रवेश करके उसके अन्दर समाविष्ट एकता का पता लगायें, लेकिन बुद्धि का द्वारा नहीं, जैसाकि आप प्रयत्न करने की कोशिश कर रही हैं। जहाँ सत्य है, वहाँ असत्य भी जरूर होना चाहिए, इसी तरह जहाँ प्रकाश है, वहाँ छाया भी जरूर होगी। जब तक आप तर्क और बुद्धि ही नहीं, बल्कि शरीर का भी सर्वथा उत्सर्ग न कर दें तबतक आप इस व्यापक ज्ञान की अनुभूति नहीं कर सकते।"

श्रीमती हाउ-मार्टिन भौचक्की रह गई, और उनकी मुलाकात का समय बीता जा रहा था, लेकिन गाँधीजी ने कहा, "नहीं, मैं आपको और वक्त देने के लिए भी तैयार हूँ, लेकिन इसके लिए आपको वर्धा आकर मेरे पास ठहरना होगा। मैं भी

आपसे कम उत्साही नहीं हूँ, इसलिए जबतक आप मुझे अपने विचारों का न बना ले या खुद मेरे विचारों पर न आजाये तब तक आपको हिन्दुस्तान से नहीं जाना चाहिए।"

यह आनन्दप्रद वार्त्ता सुनते हुए, जो दूसरे कार्य-क्रमो के कारण यहीं रोकनी पडी, मुझे असीसी के सन्त फ्रेसिस के इन महान् शब्दो का स्मरण हो आया—"प्रकाश ने देखा और अन्धकार लुप्त हो गया, प्रकाश ने कहा, 'मै वहाँ जाऊँगा ।' शान्ति ने दृष्टि फेकी और युद्ध भाग गया, शान्ति ने कहा, 'मै वहाँ जाऊँगी।' प्रेम उदित हुआ और घृणा उड गई, प्रेम ने कहा, 'मै वहाँ जाऊँगा। और यह बात सूर्य-प्रकाश की भाँति सर्वत्र फैलकर हमारे अंतर मे प्रवेश कर गई।

—महादेव देसाई

: २ :

पाप और सन्तति-निग्रह के विषय में

गाँधीजी के ध्यान मे सारे दिन ग्राम और ग्रामवासी ही रहते है, और स्वप्न भी उन्हे इसी विषय के आते है। स्वामी योगानन्द नाम के एक सन्यासी सोलह बरस अमेरिका मे रहकर अभी-अभी स्वदेश वापिस आये है। गत सप्ताह रांची जाते हुए गाँधीजी से मिलने के लिए वे यहाँ उतर पडे और दो दिन ठहरे। उनके साथ गाँधीजी का जो खासा लम्बा सम्वाद हुआ उसमे भी उनके इस ग्राम-चिन्तन की काफी स्पष्ट झलक दिखाई देती थी। स्वामी योगानन्द केवल धर्म-प्रचार के लिए अमेरिका गये थे,

और उनके कहे अनुसार उन्होंने आचरण और उपदेश के द्वारा भारतवर्ष का आध्यात्मिक सदेश ससार को देने का ही सब जगह प्रयत्न किया। उनका यह दृढ विश्वास है कि, 'भारतवर्ष के बलि-दान से ही जगत् का उद्धार होगा।'

गॉधीजी के साथ उन्हे पाप और सन्तति निग्रह इन दो विषयो पर चर्चा करनी थी। अमेरिका के जीवन की काली बाजू उन्होंने अच्छी तरह देखी थी, और अमेरिका के युवको और युवतियो के विलासितामय जीवन की एक-एक बात पर प्रकाश डालनेवाली पुस्तक के लेखक जज लिंडसे के साथ उनका वहाँ काफी निकट का परिचय था।

गॉधीजी ने कहा, " 'दुनिया मे पाप क्यो है,' इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन है। मै तो एक ग्रामवासी जो जवाब देगा वही दे सकता हूँ। जगत् मे प्रकाश है तो अन्धकार भी है। इसी तरह जहॉ पुण्य है, वहॉ पाप होगा ही। किन्तु पाप और पुण्य तो हमारी मानवी दृष्टि से है। ईश्वर के आगे तो पाप और पुण्य-जैसी कोई चीज ही नहीं। ईश्वर तो पाप और पुण्य दोनो से ही परे है। हम गरीब ग्रामवासी उसकी लीला का मनुष्य की वाणी मे वर्णन करते हैं, पर हमारी भाषा ईश्वर की भाषा नहीं है।

"वेदान्त कहता है कि यह जगत् माया रूप है। यह निरूपण भी मनुष्य की तोतली वाणी का है। इसीलिए मै कहता हूँ कि मैं इन बातो मे पडता ही नहीं। ईश्वर के घर के गूढ-से-गूढ भेद जानने का भी मुझे अवसर मिले तो भी मै उन्हे जानने की हामी न भरूँ। कारण यह कि मुझे यह पता नहीं कि मै वह सब जानकर क्या करूँगा। हमारे आत्म-विकास के लिए इतना ही जानना काफी है कि मनुष्य जो-कुछ अच्छा काम करता है ईश्वर

निरन्तर उसके साथ रहता है। यह भी ग्रामवासी का ही निरूपण है।"

"ईश्वर सर्वशक्तिमान् तो है ही, तो वह हमे पाप से मुक्त क्यो नही कर देता ?" स्वामीजी ने पूछा।

"मै इस प्रश्न की भी उधेड़-बुन मे नही पड़ना चाहता। ईश्वर और हम बराबरी के नही है। बराबरी वाले ही एक दूसरे से ऐसे प्रश्न पूछ सकते है, छोटे-बडे नही। गॉववाले यह नही पूछते कि शहरवाले अमुक काम क्यो करते है, क्योकि वे जानते है कि अगर हमने वैसा किया तो हमारा सर्वनाश तो निश्चित ही है।'

"आपके कहने का आशय मै अच्छी तरह समझता हूँ। आपने यह बडी जोरदार दलील दी है। पर ईश्वर को किसने बनाया ?" स्वामीजी ने पूछा।

"ईश्वर यदि सर्वशक्तिमान् है तो अपना सिरजनहार उसे स्वयं ही होना चाहिए।"

"ईश्वर स्वतत्र सत्तावान् है या लोक-तंत्र मे विश्वास करने वाला ? आपका क्या विचार है ?"

"मै इन बातो पर बिल्कुल विचार नही करता। मुझे ईश्वर की सत्ता मे तो हिस्सा लेना नही, इसलिए ये प्रश्न मेरे लिए विचारणीय नही है। मै तो, मेरे आगे जो कर्तव्य है, उसे करके ही सन्तोष मानता हूँ। जगत् की उत्पत्ति कैसे हुई, और क्यो हुई, इन सब प्रश्नो की चिन्ता मे मै क्यो पड़ूँ ?"

"पर ईश्वर ने हमे बुद्धि तो दी है ?"

"बुद्धि तो जरूर दी है, पर वह बुद्धि हमे यह समझने मे सहायता देती है कि जिन बातो का हम ओर-छोर नही निकाल सकते उनमे हमें माथापच्ची नही करनी चाहिए। मेरा तो यह दृढ़

विश्वास है कि सच्चे ग्रामवासी में अद्भुत व्यावहारिक बुद्धि होती है, और इससे वह कभी इन पहेलियों की उलझन में नहीं पड़ता।"

"अब मैं एक दूसरा ही प्रश्न पूछता हूँ। क्या आप यह मानते है कि पुण्यात्मा होने की अपेक्षा पापी होना सहल है, अथवा ऊपर चढने से नीचे गिरना आसान है।"

"ऊपर से तो ऐसा मालूम होता है, पर असल बात यह है कि पापी होने की अपेक्षा पुण्यात्मा होना सहल है। कवियो ने कहा है सही कि नरक का मार्ग आसान है, पर मैं ऐसा नहीं मानता। मै यह भी नहीं मानता कि ससार मे अच्छे आदमियो की अपेक्षा पापी लोग अधिक है। अगर ऐसा है तो ईश्वर स्वय पाप की मूर्ति बन जायगा, पर वह तो अहिसा और प्रेम का साकार रूप है।"

"क्या मै आपकी अहिसा की परिभाषा जान सकता हूँ ?"

"ससार मे किसी भी प्राणी को मन,वचन और कर्म से हानि न पहुँचाना, अहिंसा है।"

गॉधीजी की इस व्याख्या पर से अहिसा के सम्बन्ध मे काफी लम्बी चर्चा हुई, पर उस चर्चा को मै छोड देता हूँ। 'हरिजन' और 'यग इडिया' मे न जाने कितनी बार इस विषय पर चर्चा हो चुकी है।

"अब मै दूसरे विषय पर आता हूँ," स्वामीजी ने कहा, "क्या आप सन्तति-निग्रह के मुक़ाबले मे सयम को अधिक पसन्द करते है ?"

"मेरा यह विश्वास है कि किसी कृत्रिम रीति से या पश्चिम मे प्रचलित मौजूदा रीतियो से सन्तति-निग्रह करना आत्मघात है। मैने यहाँ जो 'आत्मघात' शब्द का प्रयोग किया है उसका अर्थ यह नहीं है कि प्रजा का समूल नाश हो जायगा। 'आत्मघात'

शब्द को मै इससे ऊँचे अर्थ मे लेता हूँ। मेरा आशय यह है कि सन्तति-निग्रह की ये रीतियाँ मनुष्य को पशु से भी बदतर बना देती है, यह अनीति का मार्ग है।"

"पर हम यह कहाँ तक बर्दाश्त करे कि मनुष्य अविवेक के साथ सन्तान पैदा करता ही चला जाय ? मै एक ऐसे आदमी को जानता हू, जो नित्य एक सेर दूध लेता था और उसमे पानी मिला देता था, ताकि उसे अपने तमाम बच्चो को बाँट सके। बच्चो की सख्या हर साल बढ़ती ही जाती थी। क्या इसमे आप पाप नही मानते ?"

"इतने बच्चे पैदा करना कि उनका पालन-पोपण न हो सके यह पाप तो है ही, पर मै यह मानता हूँ कि अपने कर्म के फल से छुटकारा पाने की कोशिश करना तो उससे भी बड़ा पाप है। इससे तो मनुष्यत्व ही नष्ट हो जाता है।"

"तब लोगो को यह सत्य बतानेका सबसे अच्छा व्यावहारिक मार्ग क्या है ?"

"सबसे अच्छा व्यावहारिक मार्ग यह है कि हम सयम का जीवन बितावे। उपदेश से आचरण ऊँचा है।"

'मगर पश्चिम के लोग हम से पूछते है कि तुम लोग अपने को पश्चिम के लोगो से अधिक आध्यात्मिक मानते हो, फिर भी हम लोगो के मुकाबले मे तुम्हारे यहाँ बालको की मृत्यु अधिक संख्या मे क्यो होती है ? महात्माजी, आप मानते है कि मनुष्य अधिक संख्या मे सन्तान पैदा करे ?'

"मै तो यह मानने वाला हूँ कि सन्तान बिलकुल ही पैदा न की जाय।"

"तब तो सारी प्रजा का नाश हो जायगा ?"

"नाश नही होगा, प्रजा का और भी सुन्दर रूपान्तर हो

जायगा। पर यह कभी होने का नहीं, क्योंकि हमें अपने पूर्वजो से यह विषयवृत्ति का उत्तराधिकार युगानुयुग से मिला हुआ है। युगो की इस पुरानी आदत को काबू मे लाने के लिए बहुत बडे प्रयत्न की जरूरत है तो भी वह प्रयत्न सीधासादा है। पूर्ण त्याग पूर्ण ब्रह्मचर्य ही आदर्श स्थिति है। जिससे यह न हो सके, वह खुशी से विवाह करले, पर विवाहित जीवन मे भी वह संयम से रहे।"

"जन-साधारण को सयममय जीवन की बात सिखाने की क्या आपके पास कोई व्यावहारिक रीति है?"

"जैसा कि एक क्षण पहले मैं कह चुका हूँ, हमे पूर्ण संयम की साधना करनी चाहिए, और जन-साधारण के बीच जाकर सयम-मय जीवन बिताना चाहिए। भोग-विलास छोड कर ब्रह्मचर्य के साथ अगर कोई मनुष्य रहे तो उसके आचरण का प्रभाव अवश्य ही जनता पर पड़ेगा। ब्रह्मचर्य और अस्वाद व्रत के बीच अवि-च्छिन्न सम्बन्ध है। जो मनुष्य ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहता है, वह अपने प्रत्येक कार्य मे सयम से काम लेगा, और सदा नम्र बनकर रहेगा।"

स्वामीजी ने कहा—"मै समझ गया। जनसाधारण को सयम के आनन्द का पता नहीं, और हमे यह चीज उसे सिखानी है, पर मैने पश्चिम के लोगो की जिस दलील के बारे मे आपसे कहा है, उस पर आपका क्या मत है?"

"मै यह नहीं मानता कि हम लोगो मे पश्चिम के लोगो की अपेक्षा आध्यात्मिकता अधिक है। अगर ऐसा होता तो आज हमारा इतना अध पतन न होगया होता। किन्तु इस बात से कि पश्चिम के लोगो की उम्र औसतन हम लोगो की उम्र से ज्यादा लम्बी होती है, यह साबित नहीं होता कि पश्चिम मे आध्यात्मिकता

है। जिसमे अध्यात्म-वृत्ति होती है उसकी आयु अधिक लम्बी होनी ही चाहिए यह बात नही है, बल्कि उसका जीवन अधिक अच्छा, अधिक शुद्ध होना चाहिए।

—महादेव देसाई।

: ३ :

श्रीमती सैंगर और सन्तति-निरोध

श्रीमती मार्गरेट सेंगर अभी थोड़े ही समय पहले गाँधीजी से वर्धा मे मिली थी। गाँधीजी ने उन्हे अच्छी तरह समय दिया था। भारतवर्ष छोड़ने के पहले उन्होने 'इलस्ट्रेटेड वीकली' मे एक लेख लिखा है, जिसमे यह दिखाया गया है कि गाँधीजी के साथ उनकी जो बात-चीत हुई उससे उन्हे कितना थोडा लाभ प्राप्त हुआ है। गाँधीजी से वह मार्ग-दर्शन प्राप्त करने के लिए आई थी। "अगणित लोग आपको पूजते है, आपकी आज्ञा पर चलते है, फिर उनसे आप इस सम्बन्ध मे क्यो नही कहते ? उनके लिए आप कोई ऐसा मंत्र क्यो नही देते कि जिससे वे सन्मार्ग पर चलना सीखे ?"—यह वे चाहती थी। "देश के लाखो स्त्री-पुरुपो का हित आपने किया है, तो फिर इस विपय मे भी आप कुछ कीजिए।" यह उनकी माँग थी। पहले दिन अच्छी तरह वात करने के वाद जब वे तृप्त नही हुई तो दूसरे दिन भी उन्होने उतनी देर तक बाते की। अब वे अपने लेख मे यह लिखती है कि गाँधीजी को तो भारत की महिलाओ का कुछ ज्ञान ही नही, बल्कि उन्हे महिलाओ के मन का ही कुछ पता नही, क्योकि उन्होने तो सारी बात-चीत मे दो ऐसी बेहूदी बाते की कि जिनसे उनका

अज्ञान प्रकट हो गया। गाँधीजी ने इस बात-चीत में अपनी आत्मा निचोड़ दी थी, अपनी आत्म-कथा के कितने ही प्रकरण हृदयंगम भाषा में बताये थे, किन्तु उन सबका सथितार्थ इस महिला ने यह निकाला कि गाँधीजी को स्त्रियों की मनोवृत्ति का कुछ ज्ञान ही नहीं।

गाँधीजी से श्रीमती सेंगर स्त्रियों के लिए एक उद्धारक मंत्र लेना चाहती थीं। और वह मंत्र उन्हें मिला, पर वह तो असल में यह चाहती थीं कि उनके अपने मंत्र पर गाँधीजी मोहर लगा दें। इसलिए वह सुवर्ण मंत्र उन्हें दो कौड़ी का मालूम हुआ। उन्हें भले ही वह दो कौड़ी का मालूम हुआ हो, पर भारत की स्त्रियों को वह मंत्र देना जरूरी है, उन्हें वह कौड़ी मोल का मालूम नहीं जँचेगा। गाँधीजी ने तो उनसे बार-बार विनय करके यह भी कहा था कि मुझसे आपको एक ही बात मिल सकती है। मेरे और आपके तत्वज्ञान में जमीन आसमान का अन्तर है। इन सब बातों को उस समय तो उन्होंने अच्छा महत्व दिया, पर खुद उन्होंने जो लेख प्रकाशित कराया है, उसमें उन्हें ज़रा भी महत्व नहीं दिया।

गाँधीजी ने तो पीड़ित स्त्रियों के लिए यह सुवर्ण मंत्र दिया था कि—"मैंने तो अपनी स्त्री के गज़ से ही तमाम स्त्रियों का माप निकाला है। दक्षिण अफ्रिका में अनेक बहनों से मैं मिला—यूरोपीय और भारतीय दोनों से ही। भारतीय स्त्रियों से तो मैं सभी से मिल चुका था, ऐसा कहा जा सकता है क्योंकि उनसे मैंने काम लिया था। सभी से मैं तो डुँडी पीट-पीट कर कहता था कि तुम अपने शरीर की—आत्मा की तरह शरीर की भी—स्वामिनी हो, तुम्हें किसीके वश में होकर नहीं बरतना है, तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध तुम्हारे माता-पिता या तुम्हारा पति

तुमसे कुछ नहीं करा सकता, लेकिन बहुत-सी बहनें अपने पति से 'ना' नहीं कह सकतीं। इसमें उनका दोष नहीं। पुरुषों ने उन्हें गिराया है, पुरुषों ने उनके पतन के लिए अनेक तरह के जाल रचे हैं, और उन्हें बाँधने की जंजीर को भी उन्होंने सोने की जंजीर का नाम दे रक्खा है। इसलिए वे बेचारी पुरुष की ओर आकर्षित हो गई हैं। मगर मेरे पास तो एक ही सुवर्ण-मार्ग है, और वह यह कि वे पुरुषों का प्रतिरोध करें। यह वे उन्हें साफ-साफ बतला दें कि उनकी इच्छा के विरुद्ध पुरुष उनके ऊपर सन्तति का भार नहीं डाल सकते। इस प्रकार का प्रतिरोध कराने में अपने जीवन के शेष वर्ष यदि मैं खर्च कर सकूँ, तो फिर सन्तति-निग्रह-जैसी बात का कोई प्रश्न ही नहीं रहता। पुरुष यदि पशु-वृत्ति लेकर उनके पास जाये तो वे स्पष्ट रूप से 'ना' कहदें, यह शक्ति अगर उनमें आजाय तो फिर कुछ भी करने की जरूरत नहीं। यहाँ हिन्दुस्तान में तो सन्तति-निग्रह का प्रश्न ही नहीं रहेगा। सभी पुरुष तो पशु हैं नहीं। मैंने तो अपने निजी सम्पर्क में आई हुई अनेक स्त्रियों को यह प्रतिरोध की कला सिखाई है। असल प्रश्न तो यह है कि अनेक स्त्रियाँ यह प्रतिरोध करना ही नहीं चाहतीं मेरा तो यह विश्वास है कि ९९ प्रतिशत स्त्रियाँ बिना किसी कटुता के अपने प्रेम से ही पतियों से यह प्रार्थना कर सकती हैं कि हमारे ऊपर आप बलात्कार न करें। यह चीज असल में उन्हें सिखाई नहीं गई, न माता-पिता ने ही सिखाई, न समाज-सुधारकों ने ही। तो भी कुछ पिता ऐसे देखे हैं कि जिन्होंने अपने दामाद से यह बात की है, और कुछ अच्छे पति भी देखने में आये हैं कि जिन्होंने अपनी स्त्री की रक्षा की है। मेरी तो सौ बात की एक बात है कि स्त्रियों को प्रतिरोध का जो जन्म-सिद्ध अधिकार है, उसका उन्हें निर्बाध

रीति में उपयोग करना चाहिए ।"

मगर यह बात श्रीमती सेंगर को बेहूदी-सी मालूम हुई। गाँधीजी के आगे तो उन्होंने नहीं कहा पर अपने लेख में वे कहती हैं कि इस सारी बात से गाँधीजी का अज्ञान ही प्रकट होता है, क्योंकि स्त्रियों में इस तरह का प्रतिरोध करने की शक्ति ही नहीं। आज स्त्रियाँ यह प्रतिरोध नहीं करतीं यह तो गाँधीजी भी खुद मानते हैं, पर उनका कहना यह है कि प्रत्येक शुद्ध सुधारक का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वह स्त्रियों को इस तरह का प्रतिरोध करने की शिक्षा दे। क्रोध, द्वेष और हिंसा की दावाग्नि महात्मा ईसा के जमाने में भी सुलग रही थी, किन्तु उन्होंने उपदेश दिया प्रेम का, अहिंसा का। इस उपदेश का पालन आज भी कम ही होता है पर इससे यह कोई नहीं कहता कि महात्मा ईसा को मानव-समाज का ज्ञान न था।

श्रीमती सेंगर बम्बई की चालियों में कुछ स्त्रियों से मिलकर आई थीं, और कहती थीं कि उन स्त्रियों के साथ बात करने पर उन्हें ऐसा लगा कि उन स्त्रियों को यदि सन्तति-निग्रह के साधन प्राप्त हो जाये तो उन्हें बडी खुशी हो। ईश्वर जाने, वे वहाँ किस चाली में गई थीं, और उनका दुभाषिया कौन था! मगर गाँधीजी ने तो उनसे यह कहा कि, "हिन्दुस्तान के गाँवों में आप जाये तो आपके सन्तति-निग्रह के इन उपायों की वे लोग बात भी सहन नहीं करेंगी। आज इनी-गिनी पढी-लिखी स्त्रियों को आप भले ही बहका सके, पर इससे आप यह न मान ले कि हिन्दुस्तान की स्त्रियों की ऐसी मनोवृत्ति है।"

लेकिन श्रीमती सेंगर को ऐसा मालूम हुआ कि इस प्रतिरोध से तो गार्हस्थ्य जीवन में कलह बढेगा, स्त्रियाँ अप्रिय हो जायँगी, पति-पत्नी के विवाहित जीवन की सुगन्ध और सुन्दरता नष्ट हो

जायगी। वात तो यह थी कि इस प्रतिरोध से यह सब होगा, यह बात नही, पर बिना शरीर सम्बन्ध का विवाहित जीवन ही शुष्क हो जाता है, ऐसा वे मानती है। इसलिए शरीर-सम्बन्ध के विरुद्ध यह विद्रोह की सलाह ही उनके गले नही उतरती। अमेरिका के कुछ उदाहरण उन्होने गॉधीजी के आगे रक्खे और बतलाया कि 'देखिए, इन पति-पत्नियो का जीवन अलग-अलग रहने से कण्टक-मय होगया था, पर उन्होने सन्तति-निग्रह करना सीखा और इससे वे लोग विवाहित जीवन का आनद भी उठा सके, और उनका जीवन भी सुखी हुआ।" गॉधीजी ने कहा—"मै आपको पचासो उदाहरण दूसरे प्रकार के दे सकता हूॅ। शुद्ध संयमी जीवन से कभी दुःख की उत्पत्ति नही हुई, किन्तु आत्म-सयम तो एक खरी वस्तु है। आत्म-संयम रखनेवाला व्यक्ति अपने जीवनमात्र को जबतक सयत नही करता, तबतक उसमे वह सफल हो ही नही सकता। मेरा तो यह विश्वास है कि आपने जो उदाहरण दिये है वे तो सयम-हीन, बाह्य त्याग करके अन्तर से विषय का सेवन करनेवालो के उदाहरण है। उन्हे यदि मै सन्तति-निग्रह के उपायो की सिफ़ारिश करूॅ तो उनका जीवन तो और भी गन्दा हो जाय।"

कुॅवारे स्त्री-पुरुषो के लिए तो यह साधन नरक का द्वार खोल देगे। इस विषय मे गॉधीजी को शका ही नही थी। उन्होने अपने अनुभव भी सुनाये, मगर श्रीमती सेगर की वर्धा की बातचीत से यह जान पड़ा कि वे कुॅवारे पुरुषो के लिए इन उपायो की सिफारिश नही कर रही है। उन्होने तो इतना पूछा कि "विवाहितो के लिए भी क्या आप इन साधनो की अनुमति नही देते ?" गॉधी-जी ने कहा, "नही, विवाहितो का भी यह साधन सत्यानाश करेगे।" श्रीमती सेगर ने अपने लेख मे जो दलील इसके विरुद्ध रक्खी है,

वह दलील उन्होंने बातचीत में नहीं दी थी। वे लिखती हैं—"यदि सन्तति-निग्रह के साधन से ही मनुष्य अत्यन्त विषयी अथवा व्यभिचारी बनते हों, तब तो गर्भाधान के बाद के नौ मास में भी अतिशय विषय और व्यभिचार के लिए क्या गुंजाइश नहीं रहती ?" दलील की खातिर तो यह दलील दी जा सकती है, पर मालूम होता है कि श्रीमती सेंगर ने इस बात का विचार नहीं किया कि स्त्री-जाति के लिए ही यह दलील कितनी अपमानजनक है। बहुत ही दबाई हुई अथवा एकाध अत्यन्त विषयान्ध स्त्री को छोड़कर क्या कोई गर्भवती स्त्री अपने पति की भी विषय-वासना के वश होती है ?"

मगर बात असल में यह थी कि श्रीमती सेंगर और गाँधीजी की मनोवृत्तियों में पृथ्वी-आकाश का अन्तर था। बातचीत में विषयेच्छा और प्रेम की चर्चा चली। गाँधीजी ने कहा कि विषयेच्छा और प्रेम ये दोनों अलग-अलग चीजें हैं। श्रीमती सेंगर ने भी यही बात कही। गाँधीजी ने अपने अनुभव का प्रकाश डालकर कहा कि "मनुष्य अपने मन को चाहे जितना धोखा दे, पर विषय विषय है, और प्रेम प्रेम है। कामरहित प्रेम मनुष्य को ऊँचा उठाता है, और काम-वासना वाला सम्बन्ध मनुष्य को नीचे गिराता है।" गाँधीजी ने सन्तानोत्पत्ति के लिए किये हुए धर्म्य सम्बन्ध का अपवाद कर दिया। उन्होंने दृष्टान्त देकर समझाया कि "शरीर-निर्वाह के लिए हम जो कुछ खाते हैं, वह अस्वाद है, आहार है, पर जो जीभ को प्रसन्न करने के लिए खाते हैं वह आहार नहीं, अस्वाद नहीं, किन्तु स्वाद है और विहार है। हलवा या पकवान या शराब मनुष्य भूख या प्यास बुझाने के लिए नहीं खाता-पीता, किन्तु केवल अपनी विषय-लोलुपता के वश होकर ही इन चीजों को खाता-पीता है। इसी तरह शुद्ध सन्तानोत्पत्ति के

लिए पति-पत्नी जब इकट्ठे होते है तब उस सम्बन्ध को प्रेम-सम्बन्ध कहते है, सन्तानोत्पत्ति की इच्छा के विना जब वह इकट्ठे हाते है, तो वह प्रेम नही, भोग है।"

श्रीमती सेगर ने कहा—"यह उपमा ही मुझे स्वीकार्य नही।"

गाँधीजी—"आपको यह क्यो स्वीकार्य हो ? आप तो सन्तानेच्छारहित सम्बन्ध को आत्मा की भूख मानती है, इसलिए मेरी बात क्यो आपके गले उतरे ?"

श्रीमती सेगर—"हाँ, मै उसे आत्मा की भूख मानती हूँ। मुख्य बात यह है कि वह भूख किस तरह तृप्त की जाय। तृप्ति के परिणाम-स्वरूप सन्तान हो या न हो यह गौण बात है। अनेक बच्चे विना इच्छा के ही उत्पन्न होते है और शुद्ध सन्तानोत्पत्ति के लिए तो कौन दम्पती इकट्ठे होते होगे ? यदि शुद्ध सन्तानोत्पत्ति के लिए ही इकट्ठे हो तो पति-पत्नी को जीवन मे तीन-चार बार ही विषयेच्छा को तृप्त करके सन्तोष मानना पडे। और यह तो ठीक बात नही कि सन्तानेच्छा से जो सम्बन्ध किया जाय, वह शुद्ध प्रेम है और सन्तानेच्छारहित सम्बन्ध विषय-सम्बन्ध है।"

"गाँधीजी—मै यह अनुभव की बात कहता हूँ कि मैने अमुक सन्ताने होने के बाद अपने विवाहित जीवन मे शरीर-सम्बन्ध बन्द कर दिया। सन्तानेच्छा का या सन्तानेच्छारहित सभी सम्बन्ध विषय-सम्बन्ध है, ऐसा आप कहना चाहे तो मैं यह कबूल कर सकता हूँ। मेरा तो एक अनुभव आईना-सा स्पष्ट है कि मै जब-जब शरीर-सम्बन्ध करता था, तब हमारे जीवन मे सुख एवं शांति और विशुद्ध आनन्द नही होता था। एक आकर्षण था सही, किन्तु ज्यो-ज्यो हमारे जीवन मे,—मेरे मे—संयम बढता गया, त्यो-त्यो हमारा जीवन अधिक उन्नत होता गया। जब तक विषयेच्छा थी, तबतक सेवा-शक्ति शून्यवत् थी। विषयेच्छा पर चोट

की कि तुरन्त सेवा-शक्ति उत्पन्न हुई। काम नष्ट हुआ और प्रेम का साम्राज्य जमा।" गाँधीजी ने अपने जीवन के एक अन्य आकर्षण की भी बात की। उस आकर्षण से ईश्वर ने उन्हें किस तरह बचाया यह भी उन्होंने बतलाया, पर ये तमाम अनुभव की बातें श्रीमती सेंगर को अप्रस्तुत मालूम हुईं। शायद न मानने योग्य मालूम हुई हों तो कोई अचरज नहीं, क्योंकि अपने लेख में वे कहती हैं कि "कॉंग्रेस के मुठी-भर आदर्शवादी कार्यकर्ता अपनी विषयेच्छा को दबाकर सेवा-शक्ति में भले ही परिणत कर सके हों, पर उन इने-गिने व्यक्तियों को छोड़कर उन्हें तो हम लोगों की बातें करनी थीं।" पर जहाँतक मेरा खयाल है, गांधीजी ने तो कॉंग्रेस या कॉंग्रेस के कार्यकर्ताओं का सारी बातचीत में कोई हवाला ही नहीं दिया था, पर श्रीमती सेंगर यह भूल जाती हैं कि तमाम नैतिक उन्नति "मुट्ठी-भर आदर्शवादियों" के आचरण की बदौलत ही हुई है। सच बात तो यह है कि गाँधीजी ने बतौर स्वप्नद्रष्टा के बात नहीं की थी। गाँधीजी खुद एक नीति-शिक्षक हैं और श्रीमती सेंगर भी नीति-शिक्षिका हैं, वे स्वयं एक समाज सेवक हैं और श्रीमती सेंगर भी समाज सेविका हैं यह मानकर ही सारा संवाद चला था। और यह होते हुए भी व्यवहार की भूमिका पर खड़े होकर ही उन्होंने उनसे बातें की थीं। उन्होंने कहा—"नहीं, बतौर नीति-रक्षक के मेरा और आपका कर्तव्य तो यह है कि इस सन्तति-निग्रह को छोड़कर अन्य उपायों का आयोजन करें। जीवन में कठिन पहेलियाँ तो आयेंगी ही, पर वे किसी मनचाहे अनुकूल साधन से हल नहीं की जासकतीं। इन सन्तति-निग्रह के साधनों को अवश्य समझकर आप चलेंगी तभी आपको अन्य साधन सूझेंगे। तीन-चार बच्चे पैदा होजाने के बाद माँ-बाप को अपनी विषय-वासना शान्त कर देनी चाहिए, इस प्रकार की

शिक्षा हम क्यो न दे, इस तरह का कानून हम क्यो न बनावे ? विषय-भोग खूब तो भोग लिया, चार-चार बच्चे होजाने के बाद भोग-वासना को अब क्यो न रोका जाय ? बच्चे मर जायँ और बाद को जरूरत हो तो सन्तान उत्पन्न करने की गरज से पति-पत्नी फिर से इकट्ठे हो सकते है। आप ऐसा करेगी तो विवाह-बन्धन को आप ऊँचे दरजे पर ले जायँगी। सन्तति-निग्रह की सलाह मुझसे कोई स्त्री लेने आवे तो मै तो उससे यही कहूँ कि, 'यह सलाह, बहन, तुम्हे मेरे पास मिलने की नही, और किसी के पास जाओ।' पर आप तो सन्तति-निग्रह के धर्म का आज प्रचार कर रही है। मै आप से यह कहूँगा कि इससे आप लोगो को नरक मे लेजाकर पटकेगी, क्योकि उनसे आप यह तो कहेगी नही कि—'बस, अब इससे आगे नही।' इसमे आप कोई मर्यादा तो रख नही सकेगी।"

वर्धा मे जो बातचीत हुई उसमे तो श्रीमती सेंगर ने इतने अधिक मित्रभाव से, इतनी अधिक जिज्ञासा-वृत्ति से बर्ताव किया कि कुछ पूछिये नही। गाँधीजी से उन्होने कहा था—"पर आप कोई उपाय भी तो बतलाइए। संयम मै भी चाहती हूँ, सयम मुझे अप्रिय नही, पर शक्य संयम का ही पालन हो सकता है न ?" सत्य-शोधक की नम्रता से गाँधीजी ने कहा—"निर्बल मनुष्यो के लिए एक उपाय दिखाई देता है। वह उपाय हाल ही मे एक मित्र की भेजी हुई पुस्तक मे देखा है। उसमे यह सलाह दी है कि ऋतु-काल के बाद के अमुक दिनो को छोड़कर विषय-सेवन किया जाय। इस तरह भी मनुष्य को महीने मे १०-१२ दिन मिल जाते है और सन्तानोत्पादन से वह बच सकता है। इस उपाय मे बाकी के दिन तो संयम पालने मे ही जायँगे, इसलिए मै इस उपाय को सहन कर सकता हूँ।"

पर यह उपाय श्रीमती सेंगर को तो नीरस ही मालूम हुआ होगा, क्योंकि इस उपाय का उन्होंने न तो अपने लेख में कहीं उल्लेख किया है, न अपने भाषणों में ही। इस उपाय की ही बात करें तो सन्तति-निग्रह के साधन बेचनेवाले भीख माँगने लगें। और तीसों दिन जिन्हें भोग-वासना सताती हो, उन बेचारों की क्या हालत हो?

फिर श्रीमती सेंगर तो ऐसे दुखियों की दुख-भंजक ठहरीं। ऐसे दुखियों का मोक्ष-साधन सन्तति-निग्रह के सिवा और क्या हो सकता है। मैं यह कटाक्ष नहीं कर रहा हूँ। श्रीमती सेंगर ने अमेरिका में सर्वधर्म-परिषद् के आगे जो भाषण दिया था, उसमें उन्होंने सन्तति-निग्रह को मोक्ष-साधन का रूप दिया है। उस भाषण में उन्होंने न तो संयम की बात की है, न केवल विवाहित दम्पतियों की। वहाँ तो उन्होंने बात की है उस अमेरिका की— जहाँ हर साल २० लाख भ्रूण-हत्यायें होती हैं। इतनी बाल-हत्यायें रोकने के लिए सन्तति-निग्रह के साधनों के सिवा दूसरा उपाय ही क्या!! पर अभी जरा और आगे बढ़े तो कुछ दूसरी ही बात मालूम होगी, और वह यह कि इन विदेशी प्रचारिकाओं की चढ़ाई भारत की स्त्रियों के हितार्थ नहीं, किन्तु दूसरे ही हेतु से हो रही है। अमेरिका के उस भाषण में ही उन्होंने स्पष्ट रीति से कहा था कि—"जापान की आबादी कितनी बढ़ रही है! वहाँ तो जन-वृद्धि की मात्रा पहले ही बढ़ी-चढ़ी थी, और अब तो वह उसे भी पार कर रही है। इसी तरह अगर यह बढ़ती गई तो इन एशिया के राष्ट्रों का त्रास पृथिवी कैसे सहन कर सकेगी? राष्ट्रसंघ को इसके विरुद्ध कोई जबर्दस्त प्रतिबन्ध लगाना ही होगा। अपनी इतनी बड़ी प्रजा के लिए खाने की तंगी होने से जापान को और भी देशों की जरूरत होगी, और भी मण्डियाँ

चाहनी पड़ेगी, इसीसे वह पवित्र संधियो को भंग कर रहा है और विश्व-व्यापी युद्ध का बीज बो रहा है।" जापान आज जिस अप्रिय रीति से पेश आरहा है, उसे देखते हुए तो जापान का यह उदाहरण चतुराई से भरा हुआ उदाहरण है, पर श्रीमती सेंगर को तो इस डर का चीपा (भयंकर स्वप्न) दबा रहा है कि सन्तति-निग्रह न करनेवाले एशियाई राष्ट्र यूरोपीय प्रजा के लिए खतरनाक हो सकते है। ऐसे जन-हितैषियो की चढाई से हम जितनी ही जल्दी सजग हो जायँ उतना अच्छा।

महादेव देसाई

: ४ :

श्रीमती सेंगर का पत्र

श्रीमती सेंगर ने मुझे निम्नलिखित पत्र भेजा है --

"अपने लेख ('विदेशियो के नये-नये हमले') मे मेरे और गॉधीजी के बीच हुई बातचीत देते हुए आप कहते है कि 'इलस्ट्रेटेड वीकली' के अपने लेख मे मैने उस बातचीत का सिर्फ एक ही पहलू रक्खा है। आपकी यह बात बिल्कुल ठीक है। उस लेख मे दरअसल, उसीपर मै विचार भी करना चाहती थी।

"मुझे यह भी बता देना चाहिए कि उस लेख को छपने के लिए भेजने से पहले मैने आपकी और गॉंधीजी की एक प्रिय और वफादार मित्र म्यूरियल लेस्टर को पढकर सुना दिया था और जिसे आप 'परदे की ओट मे दुर्भाव' कहते है वह बात उन्होने ही सुझाई थी। कृपया इस बात का यकीन रक्खे कि जो बहादुर स्त्री-पुरुष हिन्दुस्तान की आजादी के लिए प्रयत्न कर रहे है उन सबके प्रति मेरे मन मे अत्यधिक श्रद्धा और सन्मान का ही भाव है। मैने

अभीतक जो-कुछ किया है उसपर आप नजर डालें तो हिन्दुस्तान में आजादी प्राप्त करने के लिए किये जानेवाले प्रयत्नों की मदद करने की गरज से १६१७ में जो पहला दल अमेरिका में संगठित हुआ था, उसमें मेरा भी नाम आपको मिलेगा।

"एक और बात भी आपके लेख में ऐसी है जिसमें, मैं समझती हूँ, आप गलती पर हैं। वह यह कि आप उसमें यह जाहिर करते मालूम पड़ते हैं कि हमारी बातचीत में गाँधीजी ने (ऋतुकाल के बाद के कुछ दिनों को छोड़कर) ऐसे दिनों में समागम के उपाय को स्वीकार कर लिया है जिनमें गर्भ रहने की सम्भावना प्रायः नहीं होती। मेरे खयाल में आप टाइप किये हुए वक्तव्य को देखें तो उसमें उनका यह कथन आपको मिलेगा, 'यह बात मुझे उतनी नहीं खलती जितनी कि दूसरी खलती है।' हालाँकि मैंने और निश्चित बात कहने का आग्रह किया, लेकिन इससे आगे उन्होंने कुछ नहीं कहा। ऐसी हालत में आपने सार्वजनिक रूप से जो कथन उनका बताया है, मेरे खयाल में, वह आपने ठीक नहीं किया। और अन्त में आपने प्रचारकों के 'व्यापार' की जो बात लिखी है, मैं नहीं समझती कि उसमें गाँधीजी आपसे सहमत होंगे। वह वाक्य और जिस भावना का वह सूचक है वह, आप-जैसे व्यक्ति के लायक नहीं है, जिसने कि निःस्वार्थ भाव से जन-सेवा का कार्य किया है।

"सन्तति-निग्रह के कार्यकर्ता जिस बात को मानव-स्वतन्त्रता एवं प्रगति के लिए मनुष्य-मात्र का मौलिक स्वत्व जानते हैं उसके लिए निःस्वार्थ भाव से और बिना किसी पारिश्रम के उन्होंने संग्राम किया है और अभी भी कर रहे हैं। फिर जो अपना विरोधी हो उसके बारे में योंही कोई ऐसी बात कह देना तो सर्वथा अनुचित, असौजन्यपूर्ण और असत्य है जो दरअसल बिल्कुल बेबुनियाद हो।"

इसमे जहाँतक 'परदे की ओट मे दुर्भाव' से सम्बन्ध है, मै प्रसन्नता से और कृतज्ञतापूर्वक अपनी भूल स्वीकार करता हूँ, लेकिन यह मानना होगा कि जिस शोखी और तुनकमिजाजी के लहजे मे वह लेख लिखा हुआ है उससे यही भाव टपकता है, हालाँकि अब मै यह मान लेता हूँ कि उनका ऐसा भाव नही था।

दूसरी गलती के बारे मे, श्रीमती सेगर को यह याद रखना चाहिए कि उन्होने तो 'बातचीत के सिर्फ एक पहलू को ही' लिया है, लेकिन मै ऐसा नही कर सकता। मै नही समझता कि यह कहकर कि ऋतुकाल के बाद के कुछ दिनो को छोड़कर ऐसे दिनो मे समागम की बात गाँधीजी सहन कर लेगे, जिनमे गर्भ रहने की सम्भावना प्राय. नही होती, क्योकि इसमे आत्म-सयम की थोड़ी-बहुत भावना तो है, मैने उन्हे किसी ऐसी स्थिति मे डाल दिया है जो उन्हे पसन्द नही है। मै तो सिर्फ यही बताना चाहता था कि अपने विरोधी की बात को भी, जहाँतक सम्भव हो, किस तत्परता के साथ गाँधीजी स्वीकार कर लेते है। उन्होने जिस कारण यह कहा कि 'यह बात मुझे उतनी नही खलती जितनी कि दूसरी खलती है' वह इस विषय मे बड़ी मुद्दे की बात है, क्योकि श्रीमती सेगर के उपाय (कृत्रिम सन्तति-निग्रह) से जहाँ महीने के सभी दिनो मे विषय-भोग मे प्रवृत्त होने की छुट्टी मिल जाती है वहाँ इस विशेष उपाय से किसी हदतक तो आत्म-सयम होता ही है।

'व्यापार' वाली बात, मै समझता हूँ, श्रीमती सेगर को बहुत बुरी लगी है, लेकिन खुद श्रीमती सेगर पर मैने ऐसा कोई आरोप नही किया है, न मेरा ऐसा कोई इरादा ही था, क्योकि मुझे मालूम है, उन्होने अपने उद्देश्य के लिए बड़ी बहादुरी और नि.स्वार्थ भाव से लड़ाई लड़ी है; मगर यह बात बिलकुल गलत

भी नहीं है कि सन्तति-निग्रह के लिए आजकल जो प्रचार होरहा है वह तथा सन्तति-निग्रह के प्राय सभी उत्साही समर्थको के यहाँ बिक्री के लिए इस सम्बन्ध का जो आकर्षक साहित्य या औजार आदि होते है वह सब मिलाकर बहुत भद्दा है। इन सब से उस उद्देश्य को तो हानि ही पहुँचती है जिसके लिए कि श्रीमती सेगर नि स्वार्थ भाव से इतना उद्योग कर रही है।

महादेव देशाई

: ५ :

स्त्रियों को स्वर्ग की देवियों न बनाइए*

इसके बाद गाँधीजी उस विषय पर आये, जिस विषय पर कि विषय-समिति मे उन्होने अपने विचार प्रकट किये थे। वायु-मण्डल अनुकूल नही था, इसलिए उस विषय पर वे कोई प्रस्ताव नहीं ले सके। 'ज्योति सघ' नामक आन्दोलन की सचालिका बहनो ने उन्हे एक पत्र लिखा था। इसी को लेकर उन्होने कुछ कहा। इस पत्र के साथ एक प्रस्ताव भी था, जिसमे उन्होने उस वृत्ति की निन्दा की, जो आजकल स्त्रियो का चित्रण करने के विषय मे वर्त्तमान साहित्य मे चल पडी है। गाँधीजी को लगा कि उनकी शिकायत मे काफी बल है और उन्होने कहा, "इस आरोप मे सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि आजकल के लेखक स्त्रियो का बिलकुल झूठा चित्रण करते है। जिस अनुचित भावुकता के साथ स्त्रियो का चरित्र-चित्रण किया जाता है, उनके शरीर-सौदर्न्य का जैसा भद्दा और असभ्यतापूर्ण वर्णन किया जाता है, उसे देख कर इन कितनी ही बहनो को घृणा होने लग गई है। क्या

*गुजरात साहित्य परिषद् की कार्यवाही का एक अश —सम्पादक

उनका सारा सौन्दर्य और बल केवल शारीरिक सुन्दरता ही मे है ? पुरुषो की लालसा-भरी विकारी आँखो को तृप्त करने की क्षमता मे ही है ? इस पत्र की लेखिकाएँ पूछती है और उनका पूछना बिलकुल न्याय है कि क्यो हमारा हमेशा इस तरह वर्णन किया जाता है, मानो हम कमजोर और दब्बू औरते हो जिनका कर्तव्य केवल यही है कि घर के तमाम हलके-से हलके काम करती रहे और जिनके एकमात्र देवता उनके पति है। जैसी वे है वैसी ही उन्हे क्यो नही बताया जाता ? वे कहती है, 'न तो हम स्वर्ग की अप्सराये है, न गुड़िया है, और न विकार और दुर्बलताओ की गठरी ही है। पुरुषो की भाँति हम भी तो मानवप्राणी ही है। जैसे वे, वैसी ही हम भी है। हम मे भी आजादी की वही आग है।' मेरा दावा है कि उन्हे और उनके दिल को मै काफी अच्छी तरह जानता हूँ। दक्षिण अफ्रीका मे एक समय मेरे आस-पास स्त्रियाँ-ही-स्त्रियाँ थी। मर्द सब उनके जेलो मे चले गये थे। आश्रम मे कोई ६० स्त्रियाँ थी। और मै उन सब लड़कियो और स्त्रियो का पिता और भाई बन गया था। आपको सुनकर आश्चर्य होगा कि मेरे पास रहते हुए उनका आत्मिक बल बढ़ता ही गया, यहाँतक कि अन्त मे वे सब खुद-ब-खुद जेल चली गई।

मुझसे यह भी कहा गया है कि हमारे साहित्य मे स्त्रियो का खामखा देवता के सदृश वर्णन किया गया है। मेरी राय मे इस तरह का चित्रण भी बिलकुल गलत है। एक सीधी-सी कसौटी मै आपके सामने रखता हूँ। उनके विषय मे लिखते समय आप उनकी किस रूप मे कल्पना करते है ? आपको मेरी यह सूचना है कि आप कागज पर कलम चलाना शुरू करे, उससे पहले यह खयाल करले कि स्त्री-जाति आपकी माता है। और मै आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आकाश से जिस तरह इस प्यासी धरती

पर सुन्दर शुद्ध जल की वर्षा होती है, इसी तरह आपकी लेखनी
से भी शुद्ध-से-शुद्ध साहित्य-सरिता बहने लगेगी। याद रखिए,
एक स्त्री आपकी पत्नी बनी, उससे पहले एक स्त्री आपकी माता
थी। कितने ही लेखक स्त्रियों की आध्यात्मिक प्यास को शान्त
करने के बजाय उनके विकारों को जागृत करते हैं। नतीजा
यह होता है कि बेचारी कितनी ही भोली स्त्रियाँ यही सोचने में
अपना समय बरबाद करती रहती हैं कि उपन्यासों में चित्रित
स्त्रियों के वर्णन के मुकाबले में वे किस तरह अपने को सजा और
बना सकती हैं। मुझे बड़ा आश्चर्य होता है कि साहित्य में उनका
नख-शिख-वर्णन क्या अनिवार्य है? क्या आपको उपनिषदों,
कुरान और बाइबिल में ऐसी चीजें मिलती हैं? फिर भी क्या
आपको पता नहीं कि बाइबिल को अगर निकाल दें तो अंग्रेजी
भाषा का भण्डार सूना हो जायगा। उनके बारे में कहा जाता है
कि उसमें तीन हिस्से बाइबिल है और एक हिस्सा शेक्सपियर।
कुरान के अभाव में अरबी को सारी दुनिया भूल जायगी। और
तुलसीदास के अभाव में जरा हिन्दी की कल्पना तो कीजिए।
आजकल के साहित्य में स्त्रियों के विषय में जो-कुछ मिलता है,
ऐसी बातें आपको तुलसी-कृत रामायण में मिलती हैं?"

———

सस्ता साहित्य मण्डल

'सर्वोदय साहित्य माला' की पुस्तकें

[नोट— × चिन्हित पुस्तके अप्राप्य है]

१—दिव्य जीवन ।=)
२—जीवन-साहित्य १।)
३—तामिल वेद ।।।)
४—व्यसन और व्यभिचार ।।।=)
५—सामाजिक कुरीतियॉ × (ज़ब्त) ।।।)
६—भारत के स्त्री रत्न (तीन भाग) ३)
७—अनोखा × १।=)
८—ब्रह्मचर्य-विज्ञान ।।।=)
९—यूरोप का इतिहास २)
१०—समाज-विज्ञान × १।।)
११—खद्दर का सम्पत्ति शास्त्र × ।।।≡)
१२—गोरो का प्रभुत्व × ।।।=)
१३—चीन की आवाज × ।-)
१४—दक्षिण अफ्रिका का सत्याग्रह १।)
१५—विजयी बारडोली × २)
१६—अनीति की राह पर ।।=)
१७—सीता की अग्नि-परीक्षा ।-)
१८—कन्या शिक्षा ।)
१९—कर्मयोग ।=)
२०—कलवार की करतूत =)
२१—व्यावहारिक सभ्यता ।।)
२२—ॲंधेरे मे उजाला ।।)
२३—स्वामीजी का बलिदान × ।-)
२४—हमारे जमाने की गुलामी × (जब्त) ।)
२५—स्त्री और पुरुष ।।)
२६—सफाई ।=)
२७—क्या करे ? १)
२८—हाथ की कताई-बुनाई × ।।-)
२९—आत्मोपदेश ।)
३०—यथार्थ आदर्श जीवन × ।।।-)
३१—जब अंग्रेज नही आये थे ।)
३२—गंगा गोविंदसिह × ।।=)
३३—श्रीरामचरित्र १।)
३४—आश्रम-हरिणी ।)
३५—हिंदी मराठी कोष × २)
३६—स्वाधीनता के सिद्धान्त × ।।)
३७—महान् मातृत्व की ओर ।।।=)
३८—शिवाजी की योग्यता ।=)
३९—तरंगित हृदय ।।)
४०—नरमेध १।।)
४१—दुखी दुनिया ।=)
४२—जिन्दा लाश ।।)
४३—आत्म-कथा (गॉंधीजी) १) १।।)
४४—जब अंग्रेज आये × (जब्त) १।=)
४५—जीवन विकास १।)

४६—किसानों का बिगुल × (ज़ब्त) =)
४७—फाँसी ! ।=)
४८—अनासक्तियोग गीताबोध (३० नवजीवन माला)
४९—स्वर्ण विहान × (ज़ब्त) ।=)
५०—मराठों का उत्थान-पतन २।।)
५१—भाई के पत्र १)
५२—स्वगत × ।=)
५३—युगधर्म × (ज़ब्त) १=)
५४—स्त्री-समस्या १।।।)
५५—विदेशी कपडे का मुक़ाबिला × ।।=)
५६—चित्रपट ।=)
५७—राष्ट्रवाणी × ।।=)
५८—इग्लैण्ड में महात्माजी ।।।)
५९—रोटी का सवाल १)
६०—दैवी सम्पद् ।=)
६१—जीवन-सूत्र ।।।)
६२—हमारा कलक ।।=)
६३—बुद्बुद ।।)
६४—सघर्ष या सहयोग ? १।।)
६५—गाधी-विचार-दोहन ।।।)
६६—एशिया की क्रान्ति × (जब्त) १।।।)
६७—हमारे राष्ट्र-निर्माता-२ १।।)
६८—स्वतन्त्रता की ओर १।।)
६९—आगे बढो ! ।।)
७०—बुद्ध-वाणी ।।=)
७१—कॉग्रेस का इतिहास २।।) –।)
७२—हमारे राष्ट्रपति १)
७३—मेरी कहानी (ज० नेहरू) २।।)
७४—विश्व-इतिहास की झलक (जवाहरलाल नेहरू) ८) =)
७५—पुत्रियाँ कैसी हो ? ।।)
७६—नया शासन-विधान–१ ।।।)
७७—(१) गाँवों की कहानी ।।)
७८—(२-६)महाभारत के पात्र ।।)
७९—सुधार और सगठन १)
८०—(३) सतवाणी ।।)
८१—विनाश या इलाज ।।।)
८२—(४) अग्रेजी राज्य में हमारी आर्थिक दशा ।।)
८३—(५) लोक-जीवन ।।)
८४—गीता-मथन १।।)
८५—(६) राजनीति प्रवेशिका ।।)
८६—(७) अधिकार और कर्तव्य ।।)
८७—गाधीवाद समाजवाद ।।।)
८८—स्वदेशी और ग्रामोद्योग ।।)
८९—(८) सुगम चिकित्सा ।।)
९०—(१०) पिता के पत्र पुत्री के नाम (ज० नेहरू) ।।)
९१—महात्मा गाधी ।=)
९२—ब्रह्मचर्य
९३—हमारे गाँव और किसान

'नवजीवनमाला' की पुस्तकें

१ **गीताबोध**—महात्मा गांधी कृत गीता का सरल तात्पर्य -)॥

२ **मङ्गल प्रभात**—महात्मा गांधी के जेल से लिखे सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य आदि व्रतो पर प्रवचन -)॥

३. **अनासक्तियोग**—महात्मा गांधी कृत गीता की टीका— =)
श्लोक सहित =) सजिल्द ।)

४. **सर्वोदय**—रस्किन के Unto This Last का गाधीजी द्वारा किया गया रूपान्तर— -)

५. **नवयुवको से दो बातें**—प्रिंस क्रोपाटकिन के 'A word to Young men' का अनुवाद— -)

६ **हिन्द-स्वराज्य**—महात्माजी की भारत की मौजूदा समस्या पर लिखी प्राचीन पुस्तक जो आज भी ताजी है— =)

७. **छूतछात की माया**—खानपान-सम्बन्धी नियमो तथा व्यवहार के बारे मे श्री आनन्द कौसल्यायन की लिखी दिलचस्प पुस्तक -)

८ **किसानो का सवाल**—ले० डॉ० अहमद की इस छोटी-सी पुस्तिका मे भारत के इन गरीब प्रतिनिधियो के सवाल पर बड़ी सुन्दरता से विचार किया गया है। हरेक भारतीय को इसको समझना और पढ़ना चाहिए। =)

९. **ग्राम-सेवा**—आजकल ग्राम-सेवा की ही चर्चा सुनाई देती है—पर वह ग्राम-सेवा किस प्रकार हो—इस पर गाधीजी ने इसमे विशद प्रकाश डाला है। -)

१० **खादी और गादी की लड़ाई**—आचार्य विनोबा के खादी और समाज-सेवा-सम्बन्धी लेख और व्याख्यान का सग्रह ≠)

११. **मधुमक्खी पालन**—श्री शा० मो० चित्रे ने इसमे हमारे एक भूले हुए ग्रामोद्योग पर वैज्ञानिक दृष्टि से प्रकाश डाला है और बताया है कि हम इसे किस प्रकार साधे। =)

१२ **गांवो का आर्थिक सवाल**—गाँवो की आर्थिक समस्या को समझानेवाली पुस्तक ≡)

१३. **राष्ट्रीय गायन**—चुने हुए बढिया देशभक्तिपूर्ण राष्ट्रीय गायन =)

१४. **खादी का महत्व**—खादी की महत्ता के बारे मे कई पहलुओ पर विचार। बम्बई सरकार के पार्लमेण्टरी सेक्रेटरी श्री गुलजारी लाल नदा द्वारा लिखित। -)॥

सामयिक साहित्य माला

१ काँग्रेस-इतिहास (१६३५–३६) ।-)

२. दुनिया का रंगमंच (जवाहरलाल नेहरू) =)

३. हम कहाँ है ? ” =)

आगे होनेवाले प्रकाशन

१. जीवन शोधन—किशोरलाल मशरूवाला
२. समाजवाद : पूँजीवाद—
३. फेसिस्टवाद
४. नया शासन विधान—(फेडरेशन)
५. हमारी आजादी की लड़ाई (२ भाग)—(हरिभाऊ उपाध्याय)
६. सरल विज्ञान—१ (चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय)
७. गांधी साहित्य माला—(इसमे गॉधीजी के चुने हुए लेखो का संग्रह होगा--इस माला मे २० पुस्तके निकलेगी। प्रत्येक का दाम ।।) होगा। पृष्ठ सं० २००--२५०)
८. टाल्स्टाय ग्रन्थावलि—(टाल्स्टाय के चुने हुए निबन्धो, लेखों और कहानियो का संग्रह। यह १५ भागो मे होगा। प्रत्येक का मूल्य ।।), पृष्ठ संख्या २००--२५०)
९. बाल साहित्य माला—(बालोपयोगी पुस्तके)
१०. लोक साहित्य माला—(इसमे भिन्न-भिन्न विपयो पर २०० पुस्तके निकलेगी। मूल्य प्रत्येक का ।।) होगा और पृष्ठ संख्या २००–२५० होगी। इसकी ८ पुस्तके प्रकाशित हो चुकी है।)
११. नवराष्ट्र माला—इसमे संसार के प्रत्येक स्वतन्त्र राष्ट्रनिर्माताओ और राष्ट्रो का परिचय है। इस मालाकी पुस्तके २००-२५० पृष्ठो की और सचित्र होगी। मूल्य ।।।)
१२. नवजीवन माला—छोटी-छोटी नवजीवनदायी पुस्तके।